

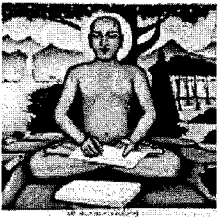
Jain Adhyatma Academy of North America (JAANA)

*Dedicated to
Preserve, Propagate & Perpetuate Jain Adhyatma*

presents

9th Annual Shibir
June 29-July 2, 2009
at
Jain Center of Southern California

**Walking the Path of Adhyatma
To Get Rid of Mithyatva, continues...**



Jain Adhyatma Academy of North America (JAANA)

*Dedicated to
Preserve, Propagate & Perpetuate Jain Adhyatma*

WELCOMES
you to a
9th ANNUAL SHIBIR
Shibir Agenda

	Mon 6/29	Tues 6/30	Wed 7/1	Thurs 7/2
7:45 - 8:30 am		Pooja	Pooja	Pooja
8:30 - 9:00 am		Breakfast	Breakfast	Breakfast
9:00 - 10:00 am		Gurudev's CD	Abhayji	Dr. Bharill
10:15- 11:15 am		Abhayji	Dhirajbhai	Abhayji
11:15- 12:15 am		Dr. Bharillji	Dr. Bharillji	Dhirajbhai
12:15- 1:30 pm		Lunch/Social	Lunch/Social	Lunch/Social
2:30 - 3:00 pm		Tea	Tea	
3:15 - 4:15 pm		Dhirajbhai till 4:45 pm	Open Forum	
4:15 - 5:15 pm		-	Abhayji	
5:30 - 6:30 pm	Regis.	Abhayji from 5:00 pm	Dhirajbhai	
7:00 - 8:00 pm	Dinner	Dinner	Dinner/Social	
8:30 - 9:30 pm	Dr. Bharillji	Gyan Gosthi	Gyan Gosthi	

INDEX

Stuti Section

Darshan Stuti (Bhatak..Bhatak)	3
Darshan Stuti (Naath Tumhare Dareshan Se)	4
Dev darshan (Dhanya Ghadi)	5
Chaitya Vandana (Jinhe Moha Bhi Jeet Na Paaye)	5
24 Tirthankar Stuti (Jo Anadi Se Vyakta Nahi Tha)	6
Vinay Paath (Safal Janma Mera Hua).....	8
Aaradhana Paath	9
Kartavyashtak	23
Saccha Jain	31

Pooja Section

Pooja Pithika.....	10
Mangal Vidhaan	11
Svasti Mangal	12
Dev Shashtra Guru Pooja	13
Shantinaath Pooja	16
Mahavir Pooja	20
Siddh Pooja.....	24
Simandhar Pooja	28
Panch Balyati Pooja.....	32
Parshvanath Pooja	36
Maha Argha	39
Shanti Paath	40
Visarjan.....	40

Shastraji Section

Pravachansaar (Padhyanuvad)	41
Tatvarth Sutra	46
MithyaGyan Ka Swaroop	54
Samaysaar Gatha 7	60

Stavan Section

Aao Re Aao Gyaananand.....	32
Prabhuji, Aab Na Bhatkenge Saansar Mein	35
Antar mein Anand Paayo.....	41
Hey Prabhu Charano Mein Tere	45
Suddhatma Ka Sraddhan	45
Gyaananand Swabhavi	45
Aise Muniver Dekhe Ban Mein.....	62
Shree Arahant Sada Mangal Maya	62
Rom Rom Se Nikale Prabhvar	63
Ashariri Siddh Bhagwan.....	63
Rom Rom Se Pulkit Ho Jaye	64
Notes.....	65

दर्शन-स्तुति

भटक-भटक भव की गलियों में, दुख ही दुख मैंने पाया ।
पा करके कुछ बाह्य वस्तुयें, निकट नहीं तेरे आया ॥१॥
कोटि-कोटि सत्कृत्यों से ही, आ पहुँचा जिनमन्दिर में ।
देख-देख प्रतिमा प्रभु तेरी, हर्ष उमड़ता अन्दर में ॥२॥
आँखों का मिल गया मुझे फल, शान्तमूर्ति दर्शन करके ।
रहूँ आपके चरणों में ही, काम-काज तज कर घर के ॥३॥
दीर्घ भ्रमण की लम्बी-चौड़ी, मेरी दुखद कहानी है ।
त्रिभुवन नाथ जिनेश्वर तुमसे, नहीं कभी वह छानी है ॥४॥
यों तो मैं अनादि से दुखिया, पर अब दुख विसराया है ।
मानव भव में मिली तुम्हारे, पद-पंकज की छाया है ॥५॥
तेरे दर्शन के प्रभाव से, मोह-ग्रन्थि सारी छूटी ।
और मानसिक ममता साँकल, क्षण भर में मेरी टूटी ॥६॥
वीतराग प्रभु के दर्शन से, पर-परिणति सत्वर भागी ।
सम्प्रति कोई अहो अपरिमित, परमशान्ति मन में जागी ॥७॥
तुच्छ इन्द्र चक्री वैभव को, प्रभु तुम दर्शन के आगे ।
अस्थिर जल बुद-बुद सम धन को, कौन मुमुक्षु अब माँगे ? ॥८॥
सफल उसी का है नर जीवन, जो तुमको अपनाता है ।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, तू ही जग का त्राता है ॥९॥
दिव्य आपके स्वच्छ ज्ञान में, लोकालोक झलकता है ।
निजस्वरूप में रहे लीन अति, तू न उसे अपनाता है ॥१०॥
बिन आयुध ही देव आपने, महामोह क्षण में मारा ।
त्रिभुवन विजयी कामदेव भी, नाथ आप से ही हारा ॥११॥
यद्यपि राग-द्वेष इस जग में, नहीं किसी से तुम करते ।
निंदक जन पाते दुख अतिशय, भव्य भक्ति द्वारा तिरते ॥१२॥

दर्शन-स्तुति

नाथ तुम्हारे दर्शन से, निज दर्शन मैंने पाया।
तुम जैसी प्रभुता निज में लख, चित मेरा हुलसाया ॥टेक॥
तुम बिन जाने निज से च्युत हो, भव-भव में भटका हूँ।
निज का वैभव निज में शाश्वत, अब मैं समझ सका हूँ॥
निज प्रभुता में मगन होऊँ, मैं भोगूँ निज की माया ॥१॥
पर्यय में पामरता, तब भी द्रव्य सुखमयी राजे।
पर्ययदृष्टि गौण करूँ, निजभाव लखूँ सुख काजे ॥
पर्यय में ही अटक-भटक कर, मैं बहु दुःख उठाया ॥२॥
पद्मासन धिर मुद्रा, स्थिरता का पाठ पढ़ाती।
निजभाव लखे से सुख होता, नासादृष्टी सिखलाती ॥
कर पर कर ने^१ कर्तृत्व रहित, सुखमय शिवपंथ सुझाया ॥३॥
यही भावना अब तो भगवन, निज में ही रम जाऊँ।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित, मैं परमसमाधि पाऊँ ॥
ज्ञान-सुखमयी ध्रुव स्वभाव ही, अब मेरे मन भाया ॥४॥

प्रभु-दर्शन

प्रभु वीतराग मुद्रा तेरी, कह रही मुझे निधि मेरी है।
हे परमपिता त्रैलोक्यनाथ, मैं करूँ भक्ति क्या तेरी है ॥१॥
ना शब्दों में शक्ति इतनी, जो वरण सके तुम वैभव को।
बस मुद्रा देख हरष होता, आत्मनिधि जहाँ उकेरी है ॥२॥
इससे दृढ़ निश्चय होता है, सुख ज्ञान नहीं है बाहर में।
सब छोड़ स्वयं में रम जाऊँ, अन्तर में सुख की ढेरी है ॥३॥
नहिं दाता हर्ता कोई है, सब वस्तु पूर्ण हैं निज में ही।
पूर्णत्व भाव की हो श्रद्धा, फिर नहीं मुक्ति में देरी है ॥४॥

देव दर्शन

धन्य घड़ी मैं दर्शन पाया, आज हृदय में आनन्द छाया ।
श्री जिनबिम्ब मनोहर लखकर, जिनवर रूपप्रत्यक्ष दिखाया ॥
मुद्रा सौम्य अखण्डित दर्पण, मैं निज भाव अखण्ड लखाया ।
निज महिमा सर्वोत्तम लखकर, फूला उर में नहीं समाया ॥
राग प्रतीक जगत में नारी, शस्त्र द्वेष का चिह्न बताया ।
वस्त्र वासना के लक्षण हैं, इन सब निर्विकार है काया ॥
जग से निस्पृह अंतदृष्टि, लोकालोक तदपि झलकाया ।
अद्भुत स्वच्छ ज्ञान दर्पण में, मुझको ज्ञानहि ज्ञान सुहाया ॥
कर पर कर देखें मैं जब से, नहीं कर्तृत्व भाव उपजाया ।
आसन की स्थिरता ने प्रभु, दौड़ धूप का भाव भगाया ॥
निष्कलंक अरू पूर्ण विरागी, एकहि रूप मुझे प्रभु भाया ।
निश्चय यही स्वरूप सु मेरा, अंतर में प्रत्यक्ष मिलाया ॥
जिन मुद्रा दृष्टि में बस गई, भव स्वाँगों से चित्त हटाया ।
आत्मन् यही दशा सुखकारी, होवे भाव हृदय उमगाया ॥

चैतन्य वंदना

जिन्हें मोह भी जीत न पाये, वे परिणति को पावन करते ।
प्रिय के प्रिय भी प्रिय होते हैं, हम उनका अभिनन्दन करते ॥
जिस मंगल अभिराम भवन में, शाश्वत सुख का अनुभव होता ।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता ॥टेक॥
जिसके अनुशासन में रहकर, परिणति अपने प्रिय को वरती ।
जिसे समर्पित होकर शाश्वत, ध्रुव सत्ता का अनुभव करती ॥
जिसकी दिव्यज्योति में चिरसंचित, अज्ञानतिमिर घुल जाता ।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता ॥१॥
जिस चैतन्य महाहिमगिरि से, परिणति के घन टकराते हैं ।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस, की मूसलधारा बरसाते हैं ॥
जो अपने आश्रित परिणति को, रत्नत्रय की निधियाँ देता ।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता ॥२॥
जिसका चिन्तनमात्र असंख्य, प्रदेशों को रोमांचित करता ।
मोह-उदयवश जड़वत् परिणति, में अद्भुत चेतनरस भरता ॥
जिसकी ध्यान अग्नि में चिरसंचित, कर्मों का कण-कण जलता ।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता ॥३॥

चौबीस तीर्थकर स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव ।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन ऋषभ जिनेश्वर राव ॥१॥
जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु वह प्रबल महान ।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन अजितनाथ भगवान ॥२॥
काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ ।
निर्मल परिणति के स्वकाल में सम्भव जिनने पाया अर्थ ॥३॥
त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल ।
वे स्वभाव का अभिनन्दन कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल ॥४॥
निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते ।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिवसुख पाते ॥५॥
पद्मप्रभ के पद-पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन ।
गुण अनन्त के सुम नों से शोभित श्री जिनवर का उपवन ॥६॥
श्री सुपार्श्व के शुभ सु-पार्श्व में जिनकी परिणति करे विराम ।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम ॥७॥
चारु चन्द्रसम सदा सुशीतल चेतन चन्द्रप्रभ जिनराज ।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज ॥८॥
पुष्पदन्त सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान ।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण ॥९॥
चन्द्ररिण सम शीतल वचनों से हरते जग का आताप ।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप ॥१०॥
त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं श्रेयांसनाथ जिनवर गुणखान ।
निज स्वभाव ही परम श्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान ॥११॥
शत इन्द्रों से पूजित जग में वासुपूज्य जिनराज महान ।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पञ्चभाव गुणों की खान ॥१२॥

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर विमलनाथ भगवान ।
 राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान ॥१३॥
 गुण अनन्त पति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज ।
 जिन अनन्त को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य ॥१४॥
 वस्तुस्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान ।
 ध्रुव की धुनमय धर्म प्रगट कर वन्दित धर्मनाथ भगवान ॥१५॥
 रागरूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम ।
 किंतु शांतिमय निजपरिणति से शोभित शांतिनाथ भगवान ॥१६॥
 कुन्धु आदि जीवों की भी रक्षा का देते जो उपदेश ।
 स्व-चतुष्टय में सदा सुरक्षित कुन्धुनाथ जिनवर परमेश ॥१७॥
 पंचेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त ।
 धन्य-धन्य अरनाथ जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किए परास्त ॥१८॥
 मोह मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात ।
 मल्लिनाथ जिन समवशरण में सदा सुशोभित हैं दिन रात ॥१९॥
 तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं ।
 वन्दन जिनवर मुनिसुव्रत जो भविजन को हितकारी हैं ॥२०॥
 नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान ।
 मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान ॥२१॥
 धर्मधुरा के धारक जिनवर धर्मतीर्थ रथ संचालक ।
 नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के है पालक ॥२२॥
 जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान ।
 ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं पार्श्वनाथ भगवान ॥२३॥
 महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान ।
 चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन वर्धमान भगवान ॥२४॥



विनय पाठ

सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज।
भव समुद्र नहीं दीखता, पूर्ण हुए सब काज ॥१॥
दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम।
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम ॥२॥
संवर कर्मों का हुआ, शान्त हुए गृह जाल।
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहीं आये मम काल ॥३॥
भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु।
उदित हुआ मुझमें प्रभो, दीखे आप समान ॥४॥
मेरा आत्मस्वरूप जो, ज्ञान सुखों की खान।
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान ॥५॥
दीन भावना मिट गई, चिन्ता मिटी अशष।
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश ॥६॥
शरण रहा था खोजता, इस संसार मँझार।
निज आतम मुझको शरण, तुमसे सीखा आज ॥७॥
निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम।
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम ॥८॥
मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव।
तन-धन-जन-जगजाल से, धरि विरागता भाव ॥९॥
यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माहिं।
राग-द्वेष की कल्पना, किंचित् उपजै नाहिं ॥१०॥

विनय पाठ बोलकर सामग्री चढ़ाने वाली थाली में शुद्ध चन्दन द्वारा मंगल स्थापना करें।
फिर पूजा पीठिका बोलकर पूजा करें।



आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं ।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं ॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ॥१॥

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं ॥
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी ।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजें भ्रम जुरी ॥२॥

नव तत्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौं ।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरों ॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा ।
तिहूँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहि लागे कदा ॥३॥

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों ।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उच्छाव सों ॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों ।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों ॥४॥

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों ।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उच्छाह सों ॥
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ ॥५॥

भावना बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत हैं ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं ॥

प्रतिमा दिग्म्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना ।
 बसुकर्म तैं में छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहूँ मोह ना ॥६॥
 में साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनहीं सों करीं ।
 में पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ में सब परिहरौं ॥
 इस दुखद पंचम काल माहीं, कुल श्रावक में लह्यौ ।
 अरु महाव्रत धरि सकीं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ ॥७॥
 आराधना उत्तम सदा, चाहूँ सुनो जिनराय जी ।
 तुम कृपानाथ अनाथ 'दानत' दया करना न्याय जी ॥
 बसुकर्मनाश विकाश, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये ।
 करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये ॥८॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
 (छंद-ताटक)

अरिहंतो को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वंदन ।
 आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन ॥१॥
 और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन ।
 परम पंच परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन ॥२॥

ॐ ही श्री अनादि मूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि ।

मंगल चार, चार हैं उत्तम चार शरण में जाऊँ मैं ।
 मन-वच-काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊँ मैं ॥३॥
 श्री अरिहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल ।
 श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल ॥४॥
 श्री अरिहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में हैं उत्तम ।
 साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम ॥५॥
 श्री अरिहंत शरण में जाऊँ, सिद्ध लोक में मैं जाऊँ ।
 साधु शरण में जाऊँ, केवलि कथित धर्मशरणा पाऊँ ॥६॥

ॐ ही नमो अर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि ।

मंगल विधान (हिन्दी)

अपवित्र हो या पवित्र, जो रामोकार को ध्याता है ।
चाहे सुस्थित हो या दुस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है ॥१॥

हो पवित्र-अपवित्र दशा, कौसी भी क्यों नहिं हो जन की ।
परमात्म का ध्यान किये, हो अन्तर-बाहर शुचि उनकी ॥२॥

है अजेय विघनों का हर्ता, रामोकार यह मंत्र महा ।
सब मंगल में प्रथम सुमंगल, श्री जिनवर ने एम कहा ॥३॥

सब पापों का है क्षयकारक, मंगल में सबसे पहला ।
नमस्कार या रामोकार यह, मन्त्र जिनागम में पहला ॥४॥

अहं ऐसे परं ब्रह्म-वाचक, अक्षर का ध्यान कर्हू ।
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन-वच-काय प्रणाम कर्हू ॥५॥

अष्टकर्म से रहित मुक्ति-लक्ष्मी के घर श्री सिद्ध नमू ।
सम्यक्त्वादि गुणों से संयुक्त, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमू ॥६॥

जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो ।
भूत शाकिनी सर्प शांत हो, विप निर्विप होता मानो ॥७॥

(यहाँ पुष्पांजलि क्षेपण करें)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य (हिन्दी)

मैं प्रशस्त मंगल गानों से युक्त जिनालय माँहि यजू ।
जल चंदन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य सजू ॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।



पूजा प्रतिज्ञा पाठ (हिन्दी)

स्याद्वाद वाणी के नायक, श्री जिनको मैं नमन कराय ।
चार अनंत चतुष्टयधारी, तीन जगत के ईश मनाय ॥
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि, उनके पुण्य कमावन काज ।
कहूँ जिनेश्वर की यह पूजा, धन्य भाग्य है मेरा आज ॥१॥

तीन लोक के गुरु जिन-पुंगव, महिमा सुन्दर उदित हुई ।
सहज प्रकाश मई दृग-ज्योति, जग-जन के हित मुदित हुई ॥
समवसरण का अद्भुत वैभव, ललित प्रसन्न करी शोभा ।
जग-जन का कल्याण करे अरु, धेम कुशल हो मन लोभा ॥२॥

निर्मल बोध सुधा सम प्रकटा, स्व-पर विवेक करावनहार ।
तीन लोक में प्रथित हुआ जो, वस्तु त्रिजग प्रकटावनहार ॥
ऐसा केवलज्ञान करे, कल्याण सभी जगतीतल का ।
उसकी पूजा रचूँ आज मैं, कर्म बोझ करने हलका ॥३॥

द्रव्य-शुद्धि अरु भाव-शुद्धि, दोनों विधि का अवलंबन कर ।
कहूँ यथार्थ पुरुष की पूजा, मन-वच-क्रम एकत्रित कर ॥
पुरुष-पुराण जिनेश्वर अर्हन्, एकमात्र वस्तु का स्थान ।
उसकी केवल-ज्ञान वह्नि में, कहूँ समस्त पुण्य आह्वान ॥४॥

(यहाँ पुष्पांजलि क्षेपण करें)

स्वस्ति मंगल (हिन्दी)

ऋषभदेव कल्याण कराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय ।
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय ॥१॥
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्म-प्रभ पद-पद्म विशेष ।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु ॥२॥
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय ।
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिव साधन हेत ॥३॥
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनंद बताय ।
धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शांति विश्व में शांति कराय ॥४॥
कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आश ।
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव ॥५॥
श्री नभि और नेमि जिनराज, करें सुमंगल मय सब काज ।
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश ॥६॥
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्य जन मंगल काज ।
मैं आयो पूजन के काज, रख्यो श्री जिन मेरी लाज ॥७॥

(यहाँ पुष्पांजलि क्षेपण करें)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन

देव-शास्त्र-गुरुवर अहो, मम स्वरूप दर्शाय ।
किया परम उपकार मैं, नमन करूँ हर्षाय ॥
जब मैं आता आप ढिंग, निज स्मरण सु आय ।
निज प्रभुता मुझमें प्रभो, प्रत्यक्ष देय दिखाय ॥

- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम् ।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।
जब से स्व-सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रूप लखा ।
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर जन्म-मरणभय दूर हुआ ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलंनि. स्वाहा ।
निज परमतत्त्व जब से देखा, अद्भुत शीतलता पाई है ।
आकुलतामय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है ॥श्री देव॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा ।
निज अक्षयप्रभुकेदर्शन सेही, अक्षयसुखविकसाया है ।
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है ॥श्री देव॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतंनिर्वपामीति स्वाहा ।
निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है ।
विभुब्रह्मचर्यरसप्रकट हुआ, दुर्दान्त कामविनशाया है ॥श्री देव॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पंनि. स्वाहा ।
मैं हुआ निमग्न तृप्ति सागर में, तृष्णा ज्वाल बुझाई है ।
क्षुधा आदि सब दोष नशों, वह सहज तृप्ति उपजाई है ॥श्री देव॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यंनि. स्वाहा ।
ज्ञान भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है ।
चिरमोह महातम हेस्वामी, इस क्षण ही सहज विलाया है ॥श्री देव॥
- ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपंनि. स्वाहा ।

द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जब से देखा ।
 शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिटती परभावों की रेखा ॥
 श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो ।
 ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो ॥
 ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
 अहो पूर्ण निज वैभव लख, नहीं कामना शेष रही ।
 हो गया सहज मैं निर्वाँछक, निज में ही अब मुक्ति दिखी ॥ श्री देव ॥
 ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
 निज से उत्तम दिखे न कुछ भी, पाई निज अनर्घ्य माया ।
 निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानन्द प्रकट पाया ॥ श्री देव ॥
 ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

ज्ञानमात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय ।
 धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय ॥

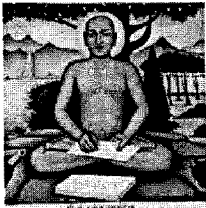
(हरिगीत-छन्द)

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो ।
 निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो ॥
 सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो ।
 कल्याण वाँछक भविजनों, के आप ही आदर्श हो ॥
 शिवमार्ग पाया आप से, भवि पा रहे अरु पायेंगे ।
 स्वाराधना से आप सम ही, हुए हो रहे होयेंगे ॥
 तव दिव्यध्वनि में दिव्य-आत्मिक, भाव उद्घोषित हुए ।
 गणधर गुरु आम्नाय में, शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए ॥
 निर्ग्रन्थ गुरु के ग्रन्थ ये, नित्य प्रेरणायें दे रहे ।
 निजभाव अरु परभाव का, शुभ भेदज्ञान जगा रहे ॥
 इस दुषम भीषण काल में, जिनदेव का जब हो विरह ।
 तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार हैं ॥

जग से उदास रहें स्वयं में, वास जो नित ही करें।
 स्वानुभव मय सहज जीवन, मूल गुण परिपूर्ण हैं ॥
 नाम लेते ही जिन्हों का, हर्ष मय रोमाँच हो।
 संसार-भोगों की व्यथा, मिटती परम आनन्द ही ॥
 परभाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किए।
 निजभाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से ॥
 उन देव-शास्त्र-गुरु प्रति, आता सहज बहुमान है।
 आराध्य यद्यपि एक, ज्ञायकभाव निश्चय ज्ञान है ॥
 अर्चना के काल में भी, भावना ये ही रहे।
 धन्य होगी वह घड़ी, जब परिणति निज में रहे ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यनि. स्वाहा ।

अहो कहाँ तक मैं कहूँ, महिमा अपरम्पार।
 निज महिमा में मगन हो, पाऊँ पद अविकार ॥
 (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)



Jain Adhyatma Academy of North America (JAANA)

Dedicated to

Preserve, Propagate & Perpetuate Jain Adhyatma

Invites you to become a member
and be a part of the team to promote
Jain Tatvagyan

Visit www.jaana.org for more information.

श्री शान्तिनाथ पूजन

(गीतिका)

चक्रवर्ती पाँचवें अरू कामदेव सु बारहवें ।
इन्द्रादि से पूजित हुए, तीर्थेश जिनवर सोलहवें ॥
तिहुँलोक में कल्याणमय, निर्ग्रन्थ मारग आपका ।
बहुमान से पूजन निमित्त, स्वरूप चिन्तें आपका ॥

(सोरठा)

चरणों शीस नवाय, भक्तिभाव से पूजते ।
प्रासुक द्रव्य सुहाय, उपजे परमानन्द प्रभु ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवोषट् इत्याह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

(बसन्ततिलका)

प्रभु के प्रसाद अपना ध्रुवरूप जाना,
जन्मादि दोष नाशें हो आत्मध्याना ।

श्री शान्तिनाथ प्रभु की पूजा रचाऊँ,

सुख शान्ति सहज स्वामी निज माँहि पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलंनिर्वपामीति स्वाहा ।

जाना स्वरूप शीतल उद्योतमाना,

भव ताप सर्व नाशे हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षय विभव प्रभु सम निज माँहि जाना,

अक्षय स्वपद सु पाऊँ हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

निष्काम ब्रह्मरूपं निज आत्म जाना,

दुर्दान्त काम नाशे हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

परिपूर्ण तृप्त ज्ञाता निजभाव जाना,

नाशें क्षुधादि क्षण में हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्मोह ज्ञानमय ज्ञायक रूप जाना,

कैवल्य सहज प्रगटे हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

निष्कर्म निर्विकारी चिद्रूप जाना,

भव-हेतु-कर्म नाशें हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्वन्ध मुक्त अपना शुद्धात्म जाना,

प्रगटे सु मोक्ष सुखमय हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

अविचल अनर्घ्य प्रभुतामय रूप जाना,

विलसे अनर्घ्य आनन्द हो आत्मध्याना ॥श्री शान्ति... ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

भादौ कृष्णा सप्तमी, तजि सर्वार्थ विमान ।

ऐरा माँ के गर्भ में, आए श्री भगवान ॥

ॐ ह्रीं श्री भादवकृष्णासप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णा जेठ चतुर्दशी, गजपुर जन्मे ईश ।

करि अभिषेक सुमेरू पर, इन्द्र झुकावें शीश ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सारभूत निर्ग्रन्थ पद, जगत असार विचार ।

कृष्णा जेठ चतुर्दशी, दीक्षा ली हितकार ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यांतपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आत्मध्यान में नशि गये, घातिकर्म दुखदान ।

पौष शुक्ल दशमी दिना, प्रगटो केवलज्ञान ॥

ॐ ह्रीं श्री पौषशुक्लादशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जेठ कृष्ण चौदशि दिना, भये सिद्ध भगवान ।

भाव सहित प्रभु पूजते, हौवे सुख अम्लान ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यांमोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(चौपाई)

जय जय शान्ति नाथ जिनराजा, गाँऊ जयमाला सुखकाजा ।

जिनवर धर्म सु मंगलकारी, आनन्दकारी भवदधितारी ॥

(लावनी)

प्रभु शान्तिनाथ लख शान्त स्वरूप तुम्हारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥टेका॥

हे वीतराग सर्वज्ञ परम उपकारी,

अद्भुत महिमा मैंने प्रत्यक्ष निहारी ।

जो द्रव्य और गुण पर्यय से प्रभु जानें,

वे जानें आत्मस्वरूप मोह को हानें ॥

बिनशें भव बन्धन हो सुख अपरम्पारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥१॥

हे देव! क्रोध बिन कर्म शत्रु किम मारा?

बिन राग भव्य जीवों को कैसे तारा?

निर्ग्रन्थ अकिंचन हो त्रिलोक के स्वामी,

हो निजानन्दरस भोगी योगी नामी ॥

अद्भुत, निर्मल है सहज चरित्र तुम्हारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥२॥

सर्वार्थ सिद्धि से आ परमार्थ सु साधा,

हो कामदेव निष्काम तत्त्व आराधा ।

तजि चक्र सुदर्शन, धर्मचक्र को पाया,

कल्याणमयी जिन धर्म तीर्थ प्रगटाया ॥

अनुपम प्रभुता माहात्म्य विश्व से न्यारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥३॥

गुणगान करूँ हे नाथ आपका कैसे?

हे ज्ञानमूर्ति ! हो आप आप ही जैसे ।
हो निर्विकल्प निर्ग्रन्थ निजातम ध्याऊँ,

परभावशून्य शिवरूप परमपद पाऊँ ॥
अद्वैत नमन हो प्रभो सहज अविकारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥४॥
कुछ रहा न भेद विकल्प पूज्य पूजक का,

उपजे न द्वन्द दुःखरूप साध्य साधक का ।
ज्ञाता हूँ ज्ञातारूप असंग रहूँगा,

पर की न आस निज में ही तृप्त रहूँगा ॥
स्वभाव स्वयं को होवे मंगलकारा ।

चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा ॥५॥
(घत्ता)

जय शान्ति जिनेन्द्रं, आनन्दकन्दं, नाथ निरंजन कुमतिहरा ।
जो प्रभु गुणगावें, पाप मिटावें, पावें आतमज्ञान वरा ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा ।
(दोहा)

भक्तिभाव से जो जजें, जिनवर चरण पुनीत ।
वे रत्नत्रय प्रगटकर, लहें मुक्ति नवनीत ॥

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि)

भाव-भक्ति

प्रभुवर ऐसी पूजा रचाऊँ, जासों दुखमय पाप नशाऊँ ॥टेक ॥

अन्तर्दृष्टि कर प्रभु सम ही, आतम देव लखाऊँ ।

भेदज्ञान से छने सु प्रासुक, अनुभव जल से नहाऊँ ॥१॥

भक्तिभाव से रोमांचित हो, तत्त्वभावना भाऊँ ।

तज परिग्रह जंजाल विषय सब, अधिक अधिक हर्षाऊँ ॥२॥

समरस जल ले क्षमा भावमय, उत्तम चन्दन लाऊँ ।

अमल भावमय अक्षत लेकर, पुष्प शील प्रगटाऊँ ॥३॥

आतम रसमय नैवेद्य लेकर, ज्ञानदीप प्रज्वलाऊँ ।

ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, परमभाव फल लाऊँ ॥४॥

अर्घ्य अभेद भक्तिमय लेकर, शान्त नृत्य विलसाऊँ ।

पूजक पूज्य विकल्प नशाऊँ, सहज पूज्य पद पाऊँ ॥५॥

श्री महावीर पूजन

(दोहा)

अद्भुत प्रभुता शोभती, झलकेशान्ति अपार ।
महावीर भगवान के, गुण गाऊँ अविकार ॥
निजबल से जीत्यो प्रभो, महाक्लेशमय काम ।
पूजन करते भावना, वर्तू नित निष्काम ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

(त्रिभंगी)

भव भव भटकायो, अति दुखपायो, तृष्णाकुलतुमडिङ्ग आयो ।
उत्तम समता जल शुचि अति शीतल, पायो, उर आनन्द छायो ॥
इन्द्रादि नमन्ता, ध्यावत संता, सुगुण अनन्ता, अविकारी ।
श्री वीर जिनन्दा, पाप निकन्दा, पूजो नित मंगलकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव ताप निकन्दन, चन्दन सम गुण, हरष हरष गाऊँ ध्याऊँ ।

नाशूँ दुर्मोहं, दुखमय क्षोभं, सहज शान्ति प्रभु सम पाऊँ ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षय गुणमण्डित, अमल अखंडित, चिदानन्द पद प्रीति धरूँ ।

क्षत् विभवन चाहूँ, तोष बढ़ाऊँ, अक्षय प्रभुता प्राप्त करूँ ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रभु सम आनन्दमय, नित्यानन्दमय, परम ब्रह्मचर्य चाहत हों ।

नव बाढ़लगाऊँ, काम नशाऊँ, सहज ब्रह्मपद ध्यावत हों ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

दुख क्षुधा नशावन, पायो पावन, निज अनुभव रस नैवेद्यं ।

नित तृप्त रहाऊँ, तुष्ट रहाऊँ, निज में ही हूँ निर्भेदं ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उद्योतस्वरूपं, शुद्धचिद्रूपं, प्रभु प्रसाद प्रत्यक्ष भयो ।

अज्ञान नशायो, समसुख पायो, जाननहार जनाय रह्यो ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

विच कर्ममहावन, भट्क्यो भगवन्, शिवमारग तुम ढिंग पायो ।
तप अग्नि जलाऊँ, कर्म नशाऊँ, स्वर्णिम अवसर अब आयो ॥
इन्द्रादि नमन्ता, ध्यावत संता, सुगुण अनन्ता, अविकारी ।
श्री वीर जिनन्दा, पाप निकन्दा, पूजो नित मंगलकारी ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
रागादि विकारं, दुखदातारं, त्याग सहज निजपद ध्याऊँ ।
साधूँहो निर्भय, शुद्धरत्नत्रय, अविनाशी शिवफल पाऊँ ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
करि अर्घ अनूपं, हे शिवभूपं, द्रव्य-भावमय भक्ति करूँ ।
तज सर्वउपाधि-बोधि-समाधि, पाऊँ निज में केलि करूँ ॥ इन्द्रादि... ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक अर्घ्य

नगरी सजी रत्न वर्षाये, सोलह स्वप्ने देखे मात ।
षष्ठमि सुदी आषाढ प्रभूका, गर्भ कल्याणक हुआ विख्यात ॥
भावसहित प्रभु करें अर्चना, शुद्धातम कल्याणस्वरूप ।
आनन्द सहित आप सम ध्यावें, पावें अविचल बोध अनूप ॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढशुक्लाषष्ठम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नरकों में भी कुछ क्षण को तो, साता का संचार हुआ ।
चैत सुदी तेरस को प्रभुवर, जन्म जगत सुखकार हुआ ॥ भाव... ॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जीरण तृण सम विषयभोग तज, बाल ब्रह्मचारी हो नाथ ।
दशमी मगसिर कृष्णा के दिन जिनदीक्षा धारी जिननाथ ॥ भाव... ॥

ॐ ह्रीं श्री मगसिरकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशमी सुदी बैशाख तिथी को, आत्मलीन हो घाति विनाश ।
धन्य धन्य महावीर प्रभु को, हुआ सु केवलज्ञान प्रकाश ॥ भाव... ॥

ॐ ह्रीं श्री बैशाखशुक्लादशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अन्तिम शुक्लध्यान प्रगटाया, शेष अघाति विमुक्त हुए।
 कार्तिक कृष्ण अमावस के दिन, वीर जिनेश्वर सिद्ध हुए ॥भाव... ॥
 ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय
 अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

वर्द्धमान श्रीवीर, सन्मति अरू महावीर जी।

जयवन्तो अतिवीर, पंचनाम जग में प्रसिद्ध ॥

(जोगीरासा)

चित्स्वरूप प्रगटाया प्रभुवर, चित्स्वरूप प्रगटाया।

स्वयं स्वयंभू होय जिनेश्वर, चित्स्वरूप प्रगटाया ॥टेका॥

हो सबसे निरपेक्ष सिंह के, भव में सम्यक् पाया।

स्वाश्रित आत्मारोधन का ही, सत्य मार्ग अपनाया ॥१॥

बढ़ती गई सु भाव विशुद्धि, दशवें भव में स्वामी।

आप हुए अन्तिम तीर्थकर, भरतक्षेत्र में नामी ॥२॥

इन्द्रादिक से पूजित जिनवर, सम्यक्ज्ञानि विरागी।

इन्द्रिय भोगों की सामग्री, दुख निमित्त लख त्यागी ॥३॥

जब शादी प्रस्ताव आपके, सन्मुख जिनवर आया।

आत्मवंचना लगी हृदय में, दृढ़ वैराग्य समाया ॥४॥

अज्ञानी सम भव में फँसना, 'क्या इसमें चतुराई?'।

भव भव में भोगों में फँसकर, भारी विपदा पाई ॥५॥

उपादेय निज शुद्धातम ही, अब तो भाऊँ ध्याऊँ।

धरूँ सहज मुनिधर्म परम साधक हो शिव पद पाऊँ ॥६॥

इस विचार का अनुमोदन कर, लौकान्तिक हर्षयि।

आप हुए निर्ग्रन्थ ध्यान से, घातिकर्म भगाये ॥७॥

हुए सु गौतम गणधर पहले, दिव्यध्वनि सुखकारी।

खिरी श्रावणी वदि एकम को, त्रिभुवन मंगलकारी ॥८॥

धर्मतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, आत्मबोध जग पाया ।
 प्रभो! आपका शासन पाकर, रोम रोम हुलसाया ॥६॥
 वर्ष बहत्तर आयु पूर्ण कर, सिद्धालय तिष्ठाये ।
 तुम गुण चिन्तन मोह नशावे, भेदज्ञान प्रगटावे ॥१०॥
 सहज नमन कर पूजन का फल औरन कुछ भी चाहूँ ।
 सहज प्रवर्ते तत्त्वभावना आवागमन मिटाऊँ ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णाचर्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(बसन्ततिलका)

सत्तीर्थ वीर प्रभु का जग में प्रवर्ते,
 निज तत्त्वबोध पाकर सब लोक हर्षे ।
 दुर्भावना न आवे मन में कदापि,
 निर्विघ्न निर्विकारी आराधना प्रवर्ते ।
 (इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि)

कर्त्तव्याष्टक

आत्म हित ही करने योग्य, वीतराग प्रभु भजने योग्य ।
 सिद्ध स्वरूप ही ध्याने योग्य, गुरु निर्ग्रन्थ ही वंदन योग्य ॥१॥
 साधर्मी ही संगति योग्य, ज्ञानी साधक सेवा योग्य ।
 जिनवाणी ही पढ़ने योग्य, सुनने योग्य समझने योग्य ॥२॥
 तत्त्व प्रयोजन निर्णय योग्य, भेद-ज्ञान ही चिन्तन योग्य ।
 सब व्यवहार हैं जानन योग्य, परमारथ प्रगटावन योग्य ॥३॥
 वस्तुस्वरूप विचारन योग्य, निज वैभव अवलोकन योग्य ।
 चित्स्वरूप ही अनुभव योग्य, निजानंद ही वेदन योग्य ॥४॥
 अध्यात्म ही समझने योग्य, शुद्धात्म ही रमने योग्य ।
 धर्म अहिंसा धारण योग्य, दुर्विकल्प सब तजने योग्य ॥५॥
 श्री जिनधर्म प्रभावन योग्य, ध्रुव आत्म ही भावन योग्य ।
 सकल परीषह सहने योग्य, सर्व कर्म मल दहने योग्य ॥६॥
 भव का भ्रमण मिटाने योग्य, क्षपक श्रेणी चढ़ जाने योग्य ।
 तजो अयोग्य करो अब योग्य, मुक्तिदशा प्रगटाने योग्य ॥७॥
 आया अवसर सबविधि योग्य, निमित्त अनेक मिले हैं योग्य ।
 हो पुरुषार्थ तुम्हारा योग्य, सिद्धि सहज ही होवे योग्य ॥८॥

श्री सिद्ध पूजन

(हरिगीतका एवं दोहा)

निज वज्रपौरुष से प्रभो ! अन्तरकलुष सब हर लिये।
प्रांजल^१ प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये ॥
सर्वोच्च हो अतएव बसते लोक के उस शिखर रे।
तुम को हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो ! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अन्तिम दिन आया ॥
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी।
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-मरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु ! धू धू क्रोधानल जलता है।
अज्ञानअमा^३ के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है ॥
प्रभु ! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिए मलयज लाया क्रोधासुर भागे पलकों में ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप-विनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अधिपति प्रभु! धवल भवन^३ के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अन्तर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल ॥
मैं महा मान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड खंड लोकांत-विभो।
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु अक्षत की गरिमा भर दो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

चैतन्य-सुरभि की पुष्प वाटिका, मैं विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो ॥
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु-मधुशाला^५ से ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

१. शुद्ध २. अमावस्या ३. सिद्धशिला/निर्मल चैतन्य-भवन ४. शुद्ध अन्तस्तत्व का आनन्द भवन।

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो ! इसकी पहिचान कभी न हुई।
 हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन^५ हुई ॥
 आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये।
 सत्वर^६ तृष्णा को तोड़ प्रभो ! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।
 विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय।
 कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव ॥
 पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
 अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ^७ ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।
 तेरा प्रासाद महकता प्रभु ! अति दिव्य दशांगी^८ धूपों से।
 अतएव निकट नहीं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे ॥
 यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण^९ विशुद्ध हुआ।
 छक गया योग-निद्रा^{१०} में प्रभु ! सर्वांग अमी^{११} है बरस रहा ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि. स्वाहा।
 निजलीन परमस्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिवनगरी में।
 प्रतिपल बरसात गगन^{१२} से हो, रसपान करो शिवगगरी में ॥
 ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भवसंतति का अंतिम क्षण।
 प्रभु मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।
 तेरे विकीर्ण^{१३} गुण सारे प्रभु ! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
 अतएव रसास्वादन करते, रे ! घनीभूत अनुभूति लिये ॥
 हे नाथ ! मुझे भी अब प्रतिक्षण निज-अन्तरवैभव की मस्ती।
 है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु ! ज्ञाता मात्र चिदेश।
 शोध-प्रबन्ध चिदात्म^{१४} के, सृष्टा तुम ही एक ॥

५. पुष्ट ६. अविलम्ब ७. महोत्सव। ८. दश धर्मों की ९. अन्तरंग प्रदूषण १०. आनन्द समाधि ११. अमृत १२. शून्य चैतन्य १३. खिबरे हुये १४. आत्मा के शुद्धि-विधान की शोध।

जगाया तुमने कितनी बार, हुआ नहीं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर^{१४} सम्मोहन ममता का, अरे ! बेचेत पड़ा मैं सन्त ॥
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान ॥
ज्ञान की प्रतिपल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम ॥
किंतु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी^{१५} गहल अनन्त।
अरे ! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसन्त ॥
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध ? प्रकृति की यही सनातन रीति ॥
अतः जड़ कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश ॥
घटाघन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा^{१६} मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनन्ती मीच^{१७} ॥
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव।
अन्त में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव ॥
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे ! अपराधी वह भगवान ॥
अरे ! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय ॥
अहो ! 'चित्' परम अकर्तानाथ, अरे ! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभवकोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश^{१८} ॥
बताये मर्म अरे ! यह कौन ? तुम्हारे बिन वैदेही नाथ।
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ ॥

१५. मादक १६. तोता और बन्दर जैसी १७. बिजली १८. मृत्यु, १९. अनुभूति

किया तुमने जीवन का शिल्प^{२०}, खिरे सब मोह, कर्म और गात^{२१}।
 तुम्हारा पौरुष झंझावात^{२२}, झड़ गये पीले-पीले पात ॥
 नहीं प्रज्ञा-आवर्तन^{२३} शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
 अरे प्रभु ! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक ॥
 तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहैं तुम ज्ञायक लोकालोक।
 अहो ! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग ॥
 योग-चांचल्य^{२४} हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
 अरे ! ओ योग रहित योगीश ! रहो यों काल अनन्तानन्त ॥
 जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अन्तस्तत्त्व अखंड।
 तुम्हें प्रभु ! रहा वही अवलम्ब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध ॥
 अहो ! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल^{२५} पुनीत।
 अतीन्द्रिय सौख्य चिंतन भोग, करो तुम धवल महल के बीच ॥
 उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित दूटेंगे बंधन नाथ।
 अरे ! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात ॥
 प्रभो ! बीती विभावरी^{२६} आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
 झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु ! अब अपने उस गाँव ॥
 ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं।
 चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत।
 द्रव्य^{२७}-भाव^{२८} स्तुति से प्रभो ! वंदन तुम्हें अनन्त ॥
 (पुष्पाञ्जलिंक्षिपामि)

जिनपूजा में जिनेन्द्र भगवान के प्रति बहुमान एवं उनके वीतरागी गुणों की महिमा पूर्वक निर्मलभावों की उपस्थिति रहना चाहिए, कोरी क्रियामात्र नहीं होनी चाहिए।

२०. सुन्दर रचना २१. शरीर २२. तूफान २३. झप्पि-परिवर्तन। २४. आत्म प्रदेशों का कम्पन, २५. आठों गुण, २६. रात, २७. उत्कृष्ट भक्ति परिणाम, २८. निज शुद्धात्म संवेदन।

श्रीसीमन्धरजिनपूजन

भवसमुद्र सीमित कियो, सीमंधर भगवान ।
कर सीमित निजज्ञान को प्रगट्यो पूरण ज्ञान ॥
प्रगट्यो पूरण ज्ञान वीर्य दर्शन सुखधारी ।
समयसार अविकार विमल चैतन्य विहारी ॥
अन्तर्बल से किया प्रबल रिपु मोह पराभव ।
अरे भवान्तक ! करो अभय, हर लो मेरा भव ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतरसंवौषट् आह्वानं ।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

प्रभुवर तुम जल से शीतल हो, जल से निर्मल अविकारी हो ।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तूम ही तो मल-परिहारी हो ॥
तुम सम्यज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो ।
भविजन-मनमीन प्राणदायक, भविजन मनजलज खिलाते हो ॥
हे ज्ञानपयोनिधि सीमन्धर ! यह ज्ञानप्रतीक समर्पित है ।
हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु रोग विनाशनाय जलं नि.स्वाहा ।

चन्दनसम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो ।
भवताप निकन्दन हे प्रभुवर ! सचमुच तुम ही भव दुखहर हो ॥
जल रहा हमारा अन्तःस्तल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से ।
यह शान्त न होगा हे जिनवर, रे विषयों की मधुशाला से ॥
चिर अन्तर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चन्दन हो ।
चन्दन से चरचूँ चरणाम्बुज, भवतप हर ! शत-शत वन्दन हो ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् नि.स्वाहा ।

प्रभु ! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ ।
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ ॥
अक्षत का अक्षत सम्बल ले, अक्षत साम्राज्य लिया तुमने ।
अक्षत विज्ञान दिया जग को, अक्षत ब्रह्माण्ड किया तुमने ॥
मैं केवल अक्षत अभिलाषी, अक्षत अतएव चरण लाया ।
निर्वाणशिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् नि. स्वाहा ।

तुम सुरभित ज्ञानसुमन हो प्रभु, नहीं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
 सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
 निज अन्तर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
 चैतन्य विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से॥
 सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पवेलि से यह लाया।
 इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पम् नि. स्वाहा।

आनन्द रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
 तुम मुक्त क्षुधा के वेदन से, षट्स का नाम निशान नहीं॥
 विध-विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी।
 आनन्द सुधारस निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी॥
 चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हों दूर क्षुधा के अंजन ये।
 क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी ! जब पाये नाथ निरंजन से॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् नि. स्वाहा।

चिन्मय विज्ञानभवन अधिपति, तुम लोकालोक प्रकाशक हो।
 कैवल्यकिरण से ज्योतित प्रभु, तुम महामोहतम नाशक हो॥
 तुम हो प्रकाश के पुँज नाथ, आवरणों की परछाँह नहीं।
 प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावली, पर चिन्मयता को आँच नहीं॥
 ले आया दीपक चरणों में, रे ! अन्तर आलोकित कर दो।
 प्रभु तेरे-मेरे अन्तर को, अविलम्ब निरन्तर से भर दो॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपम् नि. स्वाहा।

धू धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगती तल है।
 बेचेत पड़े सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभंजन है॥
 यह धूम-धूमरी खा खा कर, उड़ रहा गगन की गलियों में।
 अज्ञानतमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग रलियों में॥
 संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
 प्रगटे दशाँग प्रभुवर तुम को, अन्तः दशाँग की सौरभ से॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपम् नि. स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकांत दुख, अत्यंत मलिन संयोगी है।
 अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है॥
 काँटों सी पैदा हो जाती, चैतन्य सदन के आँगन में।
 चंचल छाया की माया सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में॥

तेरी पूजा का फल प्रभुवर ! हों शान्त शुभाशुभ ज्वालायें ।
मधुकल्प फलों-सी जीवन में, प्रभु शान्त लतायें छा जायें ॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए ।
भवताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये ॥
अविराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने ।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने ॥
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए ।
फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन व्यक्त हुए ॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यनि. स्वाहा ।

जयमाला

वैदही हो देह में, अतः विदेही नाथ ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास ॥
श्रीजिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत ।
वीतराग सर्वज्ञ श्री सीमंधर भगवंत ॥

हे ज्ञानस्वभावी सीमंधर, तुम हो असीम आनन्द रूप ।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप ॥
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अतिप्रचण्ड ।
हो स्वयं अखण्डित कर्मशत्रु को, किया आपने खण्ड-खण्ड ॥
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान ।
आतमस्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान ॥
तुम दर्शन ज्ञान-दिवाकर हो, वीरज मंडित आनन्द कन्द ।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सन्चे पूर्णचन्द ॥
पूरव विदेह में हे जिनवर, हो आप आज भी विद्यमान ।
हो रहा दिव्य उपदेश भव्य, पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान ॥
श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव को, मिला आपसे दिव्यज्ञान ।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान ॥
पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार ।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार ॥

दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार ।
 है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार ॥
 मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जावे समयसार ।
 है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समयसार ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यनि. स्वाहा ।

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं ।

महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

सच्चा जैन

ज्ञानी जैन उन्हीं को कहते, आतम तत्त्व निहारें जो ।
 ज्यों का त्यों जानें तत्त्वों को, ज्ञायक में चित धारें जो ॥१॥
 सच्चे देव शास्त्र गुरुवर की, परम प्रतीति लावें जो ।
 वीतराग-विज्ञान-परिणति, सुख का मूल विचारें जो ॥२॥
 नहीं मिथ्यात्व अन्याय अनीति, सप्त व्यसन के त्यागी जो ।
 पूर्ण प्रमाणिक सहज अहिंसक, निर्मल जीवन धारें जो ॥३॥
 पापों में तो लिप्त न होवें, पुण्य भलो नहीं मानें जो ।
 पर्याय को ही स्वभाव न जाने, नहीं ध्रुव दृष्टि विसारें जो ॥४॥
 भेद-ज्ञान की निर्मल धारा, अन्तर माहिं बहावें जो ।
 इष्ट -अनिष्ट न कोई जग में, निज मन माँहि विचारें जो ॥५॥
 स्वानुभूति बिन परिणति सूनी, राग जहर सम जानें जो ।
 निज में ही स्थिरता का, सम्यक पुरुषार्थ बढ़ावें जो ॥६॥
 कर्ता भोक्ता भाव न मेरे, ज्ञान स्वभाव ही जानें जो ।
 स्वयं त्रिकाल शुद्ध आनंदमय, निष्क्रिय तत्त्व चितारें जो ॥७॥
 रहे अलिप्त जलज ज्यों जल में, नित्य निरंजन ध्यावें जो ।
 आत्मन् अल्पकाल में मंगलरूप, परमपद पावें जो ॥८॥

श्री पंचबालयति जिनपूजन

(हीरगीतिका)

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति से सुशोभित हे प्रभो ।
पञ्चम परम निज पारिणामिक से विभूषित हे विभो ॥
हे नाथ तिष्ठो अत्र तुम सन्निकट हो मुझमय अहो ।
श्री बालयति पाँचों प्रभु को वन्दना शत बार हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्राः !

अत्र अवतरन्तु अवतरन्तु संवौषट् । अत्र तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु ठः ठः । अत्र मम सन्निहिता भवन्तु
भवन्तु वषट् (इति आह्वाननं स्थापनं सन्निधिकरणञ्च)

(वीरछन्द)

हे प्रभु ! ध्रुव की ध्रुव परिणति के पावन जल में कर स्नान ।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम करो निरन्तर अमृत-पान ॥
क्षणवर्ती पर्यायों का तो जन्म-मरण है नित्य स्वभाव ।
पंच बालयति-चरणों में हो तन संयोग-वियोग अभाव ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-मरा-मृत्यु
विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरभित चेतनद्रव्य आपकी परिणति में नित महक रहा ।
क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की ग्रन्थि में चहक रहा ॥

(५) आओ रे आओ रे ज्ञानन्द की...

आओ रे आओ रे ज्ञानन्द की डगरिया ।
तुम आओ रे आओ, गुण गाओ रे गाओ ।
चेतन रसिया आनन्द रसिया ॥ टेक ॥
बड़ा अचम्भा होता है, क्यों अपने से अनजान रे ।
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान रे ॥१॥
दर्शन-ज्ञान स्वभाव में, नहीं ज्ञेय का लेश रे ।
निज में निज को जान कर तजो ज्ञेय का वेश रे ॥२॥
मैं ज्ञायक मैं ज्ञान हैं, मैं ध्याता मैं ध्येय रे ।
ध्यान-ध्येय में लीन हो, निज ही निज का ज्ञेय है ॥३॥

- द्रव्य और गुण पर्यायों में सदा महकती चेतन गन्ध ।
 पंच बालयति के चरणों में क्षय हो राग-द्वेष दुर्गन्ध ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।
 परिणामों के ध्रुव प्रवाह में बहे अखण्डित ज्ञायकभाव ।
 द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव में नित्य अभेद अखण्ड स्वभाव ॥
 निज गुण-पर्यायों में प्रभु का अक्षय पद अविचल अभिराम ।
 पंच बालयति जिनवर ! मेरी परिणति में नित करो विराम ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
 गुण अनन्त के सुमनों से हो शोभित तुम ज्ञायक उद्यान ।
 त्रैकालिक ध्रुव परिणति में ही प्रतिपल करते नित्य विराम ॥
 ध्रुव के आश्रय से प्रभु तुमने नष्ट किया है काम-कलङ्क ।
 पंच बालयति के चरणों में धुला आज परिणति का पङ्क ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
 हे प्रभु ! अपने ध्रुव प्रवाह में रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त ।
 षट्स की क्या चाह तुम्हें तुम निजरस के अनुभव में मस्त ॥
 तृप्त हुई अब मेरी परिणति ज्ञायक में करके विश्राम ।
 पंच बालयति के चरणों में क्षुधा-रोग का रहा न नाम ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
 सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्ज्वलित रहती ज्ञायक के आधार ।
 प्रभो ! ज्ञानदर्पण में त्रिभुवन पल-पल होता ज्ञेयाकार ॥
 अहो निरखती मम श्रुत-परणति अपने में तव केवलज्ञान ।
 पंच बालयति के प्रसाद से प्रगट हुआ निज ज्ञायक भान ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
 त्रैकालिक परिणति में व्यापी ज्ञान सूर्य की निर्मल धूप ।
 जिससे सकल कर्म-मल क्षय कर हुए प्रभो ! तुम त्रिभुवन भूप ॥
 मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे मैं हूँ तुममय एकाकार ।
 पंच बालयति जिनवर ! मेरे शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार ॥
- ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल सदा भोगता चेतनराज ।
 अपनी चित्परिणति में रमता पुण्य-पाप फल का क्या काज ॥
 अरे ! मोक्षफल की न कामना शेष रहे अब हे जिनराज ।
 पंच बालयति के चरणों में जीवन सफल हुआ है आज ॥
 ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
 पंचम परमभाव की पूजित परिणति में जो करें विराम ।
 कारण-परमपारिणामिक का अवलम्बन लेते अविराम ॥
 वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पार्श्वनाथ-सन्मति गुणखान ।
 अर्घ्य समर्पित पंच बालयति को पञ्चम गति लहूँ महान ॥
 ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

पंच बालयति नित बसो, मेरे हृदय मँझार ।
 जिनके उर में बस रहा, प्रिय चैतन्य कुमार ॥

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा परिणति में राजे,
 पर-परिणति से भिन्न सदा निज में अनुरागे ।
 दर्शन-ज्ञानमयी उपयोग सुलक्षण शोभित,
 जिसकी निर्मलता पर आतमज्ञानी मोहित ॥

ज्ञायक त्रैकालिक बालयति मम परिणति में व्याप्त हो ।
 मैं नमूँ बालयति पंच को पंचमगति पद प्राप्त हो ॥

(वीरछन्द)

धन्य-धन्य हे वासुपूज्य जिन ! गुण अनन्त में करो निवास,
 निज आश्रित परिणति में शाश्वत महक रही चैतन्य-सुवास ।
 सत् सामान्य सदा लखते हो क्षायिक दर्शन से अविराम,
 तेरे दर्शन से निज दर्शन पाकर हर्षित हूँ गुणखान ॥
 मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर महाबली हे मल्लि जिनेश !,
 निज गुण-परिणति में शोभित हो शाश्वत मल्लिनाथ परमेश ।

प्रतिपल लोकालोक निरखते केवलज्ञान स्वरूप चिदेश,
विकसित हो चित् लोक हमारा तव किरणों से सदा दिनेश ॥
राजमती तज नेमि जिनेश्वर ! शाश्वत सुख में लीन सदा,
भोक्ता-भोग्य विकल्प विलयकर निज में निज का भोग सदा ।
मोह रहित निर्मल परिणति में करते प्रभुवर सदा विराम,
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे सुख में बसता है अविराम ॥
आत्म-पराक्रम निरख आपका कमठ शत्रु भी हुआ परास्त,
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर मोह शत्रु को किया विनष्ट ।
पार्श्वबिम्ब के चरण युगल में क्यों बसता यह सर्प कहो ? ,
बल अनन्त लखकर जिनवर का चूर कर्म का दर्प अहो ॥
क्षम्यिक दर्शन ज्ञान वीर्य से शोभित हो सन्मृति भगवान !,
भरतक्षेत्र के शासन नायक अन्तिम तीर्थकर सुखखान ।
विश्व सरोज प्रकाशक जिनवर हो केवल-मार्तण्ड महान,
अर्घ्य समर्पित चरण-कमल में वन्दन वर्धमान भगवान ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

पंचम भाव स्वरूप पंच बालयति को नमूँ ।

पाऊँ ध्रुव चिद्रूप निज कारणपरिणाममय ॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(९) प्रभूजी अब न भटकेंगे संसार में...

प्रभूजी अब न भटवेंगे संसार में
अब अपनी...हो...अब अपनी खबर हमें हो गई ॥ टेक ॥

भूल रहे थे निज वैभव को पर को अपना माना ।
विष सम पंचेन्द्रिय विषयों में ही सुख हमने जाना ॥
पर से भिन्न लखूँ निज चेतन, मुक्ति निश्चित होगी ॥१॥
महापुण्य से हे जिनवर ! अब तेरा दर्शन पाया ।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दरस पीने को चित ललचाया ॥
निर्विकल्प निज अनुभूति से, मुक्ति निश्चित होगी ॥२॥
निज को ही जानें, पहिचानें, निज में ही रम जायें ।
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित हो, शाश्वत शिवपद पायें ।
रत्नत्रय निधियाँ प्रगटायें, मुक्ति निश्चित होगी ॥३॥

श्री पार्श्वनाथ पूजन

हे पार्श्वनाथ ! हे पार्श्वनाथ, तुमने हमको यह बतलाया ।
निज पार्श्वनाथ में थिरता से, निश्चय सुख होता सिखलाया ॥
तुमको पाकर मैं तृप्त हुआ, ठुकराऊँ जग की निधि नामी ।
हे रवि सम स्वपर प्रकाशक प्रभु, मम हृदय विराजो हे स्वामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

जड़ जल से प्यास न शान्त हुई, अतएव इसे मैं यहीं तजूँ ।
निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वभाव, पहिचान उसी में लीन रहूँ ॥
तन-मन-धन निज से भिन्न मान, लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ ।
तुम जैसा वैभव पाने को, तव निर्मल चरण-कमल अर्चूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलंनिर्वपामीति स्वाहा ।

चन्दन से शान्ति नहीं होगी, यह अन्तर्दहन जलाता है ।

निज अमल भावरूपी चन्दन ही, रागाताप मिटाता है ॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा ।

प्रभु उज्वल अनुपम निजस्वभाव ही, एकमात्र जग में अक्षत ।

जितने संयोग वियोग तथा, संयोगी भाव सभी विक्षत ॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा ।

ये पुष्प काम-उत्तेजक हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती ।

निज समयसार की सुमन माल ही कामव्यथा सारी खोती ॥

तन-मन-धन निज से भिन्न मान, लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ ।

तुम जैसा वैभव पाने को, तव निर्मल चरण-कमल अर्चूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा ।

जड़ व्यञ्जन क्षुधा न नाश करें, खाने से बंध अशुभ होता ।

अरु उदय में होवे भूख अतः, निज ज्ञान अशन अब मैं करता ॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा ।

जड़ दीपक से तो दूर रहो, रवि से नहिं आत्म दिखाई दे ।

निजसम्यक्ज्ञानमयी दीपक ही, मोहतिमिर को दूर करे ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा ।

जब ध्यान अग्नि प्रज्ज्वलित होय, कर्मों का ईंधन जले सभी ।
 दशधर्ममयी अतिशय सुगंध, त्रिभुवन में फैलेगी तब ही ॥ तन ॥
 ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा ।
 जो जैसी करनी करता है, वह फल भी वैसा पाता है ।
 जो हो कर्तृत्व-प्रमाद रहित, वह महा मोक्षफल पाता है ॥ तन ॥
 ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रायमोक्षफलप्राप्ताये फलं नि. स्वाहा ।
 है निज आतमस्वभाव अनुपम, स्वाभाविक सुख भी अनुपम है ।
 अनुपम सुखमय शिवपद पाऊँ, अतएव अर्घ्य यह अर्पित है ॥ तन ॥
 ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

पञ्चकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

दूज कृष्ण वैशाख को, प्राणत स्वर्ग विहाय ।
 वामा माता उर वसे, पूजूँ शिव सुखदाय ॥
 ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।
 पौष कृष्ण एकादशी, सुतिथि महा सुखकार ।
 अन्तिम जन्म लियो प्रभु, इन्द्र कियो जयकार ॥
 ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।
 पौष कृष्ण एकादशी, बारह भावन भाय ।
 केशलोच करके प्रभु, धरो योग शिव दाय ॥
 ॐ ह्रीं पौषकृष्णाएकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।
 शुक्लध्यान में होय थिर, जीत उपसर्ग महान ।
 चैत्र कृष्ण शुभ चौथ को, पायो केवलज्ञान ॥
 ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।
 श्रावण शुक्ल सु सप्तमी, पायो पद निर्वाण ।
 सम्पेदाचल विदित है, तव निर्वाण सुथान ॥
 ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्याम् मोक्षमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा ।

जयमाला

(तर्ज-प्रभु पतित पावन में...)

हे पार्श्व प्रभु मैं शरण आयो दर्शकर अति सुख लियो ।
 चिन्ता सभी मिट गयी मेरी कार्य सब पूरण भयो ॥

चिन्तामणी चिन्तत मिले तरु कल्प माँगे देत हैं ।
 तुम पूजते सब पाप भागें सहज सब सुख हेत हैं ॥
 हे वीतरागी नाथ ! तुमको भी सरागी मानकर ।
 माँगें अज्ञानी भोग वैभव जगत में सुख जानकर ॥
 तव भक्त वाँछा और शंका आदि दोषों रहित हैं ।
 वे पुण्य को भी होम करते भोग फिर क्यों चहत हैं ॥
 जब नाग और नागिन तुम्हारे वचन उर धर सुर भये ।
 जो आपकी भक्ति करें वे दास उनके भी भये ॥
 वे पुण्यशाली भक्त जन की सहज बाधा को हरे ।
 आनन्द से पूजा करें वाँछा न पूजा की करें ॥
 हे प्रभो तव नासाग्रदृष्टि, यह बताती है हमें ।
 सुख आत्मा में प्राप्त कर ले, व्यर्थ बाहर में भ्रमें ॥
 मैं आप सम निज आत्म लखकर, आत्म में थिरता धरूँ ।
 अरु आशा-तृष्णा से रहित, अनुपम अतीन्द्रिय सुख भरूँ ॥
 जब तक नहीं यह दशा होती, आपकी मुद्रा लखूँ ।
 जिनवचन का चिन्तन करूँ, व्रत शील संयम रस चखूँ ॥
 सम्यक्त्व को नित दृढ़ करूँ पापादि को नित परिहरूँ ।
 शुभ राग को भी हेय जानूँ लक्ष्य उसका नहीं करूँ ॥
 स्मरण ज्ञायक का सदा, विस्मरण पुद्गल का करूँ ।
 मैं निराकुल निज पद लहूँ प्रभु ! अन्य कुछ भी नहीं चहुँ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला अर्घ्यनिर्वपामीति स्वाहा ।

पूज्य ज्ञान वैराग्य है, पूजक श्रद्धावान ।

पूजा गुण अनुराग अरु, फल है सुख अम्लान ॥

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

आत्मा ही आत्मा का गुरु है ।

भाव महाऽर्घ्य-२

पूजुँ मैं श्री पञ्च परम गुरु, उनमें प्रथम श्री अरहन्त।
अविनाशी अविकारी सुखमय, दूजे पूजुँ सिद्ध महन्त ॥१॥
तीजे श्री आचार्य तपस्वी, सर्व साधु नायक सुखधाम।
उपाध्याय अरु सर्व साधु प्रति, करता हूँ मैं कोटि प्रणाम ॥२॥
करूँ अर्चना जिनवाणी की, वीतराग-विज्ञान स्वरूप।
कृत्रिमाकृत्रिम सभी जिनालय, वन्दूँ अनुपम जिनका रूप ॥३॥
पंचमेरु नन्दीश्वर वन्दूँ, जहाँ मनोहर हैं जिनबिम्ब।
जिसमें झलक रहा है प्रतिपल, निज ज्ञायक का ही प्रतिबिम्ब ॥४॥
भूत भविष्यत् वर्तमान की, मैं पूजुँ चौबीसी तीस।
विदेह क्षेत्र के सर्व जिनेन्द्रों के, चरणों में धरता शीश ॥५॥
तीर्थङ्कर कल्याणक वन्दूँ, कल्याणक अरु अतिशय क्षेत्र।
कल्याणक तिथियाँ मैं चाहूँ और धार्मिक पर्व विशेष ॥६॥
सोलहकारण दशलक्षण अरु, रत्नत्रय वन्दूँ धर चाव।
दयामयी जिनधर्म अनूपम, अथवा वीतरागता भाव ॥७॥
परमेष्ठी का वाचक है जो, ओंकार वन्दूँ मैं आज।
सहस्रनाम की करूँ अर्चना, जिनके वाच्य मात्र जिनराज ॥८॥
जिसके आश्रय से ही प्रगटें, सभी पूज्यपद दिव्य ललाम।
ऐसे निज ज्ञायक स्वभाव की, करूँ अर्चना मैं अभिराम ॥९॥

दोहा - भक्तिमयी परिणाम का, अद्भुत अर्घ्य बनाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, ज्ञायकदृष्टि लाय ॥१०॥



शान्तिपाठ-२

हूँ शान्तिमय ध्रुव ज्ञानमय, ऐसी प्रतीति जब जगे।
अनुभूति हो आनन्दमय, सारी विकलता तब भगे ॥१॥
निजभाव ही है एक आश्रय, शान्ति दाता सुखमयी।
भूल स्व दर-दर भटकते, शान्ति कब किसने लही ॥२॥
निज घर बिना विश्राम नहीं, आज यह निश्चय हुआ।
मोह की चट्टान टूटी, शान्ति निर्झर बह रहा ॥३॥
यह शान्तिधारा हो अखण्डित, चिरकाल तक बहती रहे।
होवें निमग्न सुभव्यजन, सुखशान्ति सब पाते रहें ॥४॥
पूजोपरान्त प्रभो यही, इक भावना है हो रही।
लीन निज में ही रहूँ, प्रभु और कुछ वाँछा नहीं ॥५॥

सहज परम आनन्दमय निज ज्ञायक अविकार।
स्व में लीन परिणति विषैँ, बहती समरस धार ॥

विसर्जन पाठ-२

थी धन्य घड़ी जब निज ज्ञायक की, महिमा मैंने पहिचानी।
हे वीतराग सर्वज्ञ महा-उपकारी, तब पूजन ठानी ॥१॥
सुख हेतु जगत में भ्रमता था, अन्तर में सुख सागर पाया।
प्रभु निजानन्द में लीन देख, मोय यही भाव अब उमगाया ॥२॥
पूजा का भाव विसर्जन कर, तुमसम ही निज में थिर होऊँ।
उपयोग नहीं बाहर जावे, भव क्लेश बीज अब नहीं बोऊँ ॥३॥
पूजा का किया विसर्जन प्रभु, और पाप भाव में पहुँच गया।
अब तक की मूरखता भारी, तज नीम हलाहल हाय पिया ॥४॥
ये तो भारी कमजोरी है, उपयोग नहीं टिक पाता है।
तत्त्वादिक चिन्तन भक्ति से भी दूर पाप में जाता है ॥५॥
हे बल-अनन्त के धनी विभो ! भावों में तबतक बस जाना।
निज से बाहर भटकी परिणति, निज ज्ञायक में ही पहुँचाना ॥६॥
पावन पुरुषार्थ प्रकट होवे, बस निजानन्द में मग्न रहूँ।
तुम आवागमन विमुक्त हुए, मैं पास आपके जा तिष्ठूँ ॥७॥

प्रवचनसार पद्यानुवाद

शुभपरिणामाधिकार

देव-गुरु-यति अर्चना अर दान उपवासादि में ।
अर शील में जो लीन शुभ उपयोगमय वह आतमा ॥६९॥
अरे शुभ उपयोग से जो युक्त वह तिर्यग्गति ।
अर देव मानुष गति में रह प्राप्त करता विषयसुख ॥७०॥
उपदेश से है सिद्ध देवों के नहीं है स्वभावसुख ।
तनवेदना से दुखी वे रमणीक विषयों में रमे ॥७१॥
नर-नारकी तिर्यच सुर यदि देहसंभव दुःख को ।
अनुभव करें तो फिर कहो उपयोग कैसे शुभ-अशुभ ? ॥७२॥
वज्रधर अर चक्रधर सब पुण्यफल को भोगते ।
देहादि की वृद्धि करें पर सुखी हों ऐसे लगे ॥७३॥
शुभभाव से उत्पन्न विध-विध पुण्य यदि विद्यमान हैं ।
तो वे सभी सुरलोक में विषयेषणा पैदा करें ॥७४॥
अरे जिनकी उदित तृष्णा दुःख से संतप्त वे ।
है दुखी फिर भी आमरण वे विषयसुख ही चाहते ॥७५॥
इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है ।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है ॥७६॥
पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है - जो न माने बात ये ।
संसार-सागर में भ्रम में मद-मोह से आच्छन्न वे ॥७७॥

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा ३-४

(३) अन्तर में आनन्द आयो,

अन्तर में आनन्द आयो जिनवर दर्शन पायो ।
अन्तर्मुख जिनमुद्रा लखकर आतम दर्शन पायो जी पायो ॥टेक॥
वीतराग छवि सबसे न्यारी । भव्यजनों को आनन्दकारी ॥
दर्शनकर सुख पायो जी पायो, अन्तर में आनन्द आयो... ॥१॥
पुण्य उदय है आज हमारे, दर्शन कर जिनराज तुम्हारे ॥
सम्यग्दर्शन पायो जी पायो, अन्तर में आनन्द आयो... ॥२॥
मेघ घटा सम जिनवर गरजे । दिव्यध्वनि से अमृत बरसे ॥
भव आताप नशायो, नशायो, अन्तर में आनन्द आयो... ॥३॥

विदितार्थजन परद्रव्य में जो राग-द्वेष नहीं करें।
 शुद्धोपयोगी जीव वे तनजनित दुःख को क्षय करें॥७८॥
 सब छोड़ पापारंभ शुभचारित्र में उद्यत रहें।
 पर नहीं छोड़े मोह तो शुद्धात्मा को ना लहें॥७९॥
 हो स्वर्ग अर अपवर्ग पथदर्शक जिनेश्वर आपही।
 लोकाग्रथित तपसंयमी सुर-असुर वंदित आपही॥५॥*
 देवेन्द्रों के देव यतिवरवृषभ तुम त्रैलोक्यगुरु।
 जो नमें तुमको वे मनुज सुख संपदा अक्षय लहें॥६॥*
 द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को।
 वे जानते निज आत्मा दृगमोह उनका नाश हो॥८०॥
 जो जीव व्यपगत मोह हो – निज आत्म उपलब्धि करें।
 वे छोड़ दें यदि राग रुष शुद्धात्म उपलब्धि करें॥८१॥
 सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधि।
 सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधि॥८२॥
 अरे समकित ज्ञान सम्यक्चरण से परिपूर्ण जो।
 सत्कार पूजा दान के वे पात्र उनको नमन हो॥७॥*
 द्रव्यादि में जो मूढ़ता वह मोह उसके जोर से।
 कर रागरुष परद्रव्य में जिय क्षुब्ध हो चहुंओर से॥८३॥
 बंध होता विविध मोहरु क्षोभ परिणत जीव के।
 बस इसलिए सम्पूर्णतः वे नाश करने योग्य हैं॥८४॥
 अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
 और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं॥८५॥
 तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से।
 दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए॥८६॥
 द्रव्य-गुण-पर्याय ही हैं अर्थ सब जिनवर कहें।
 अर द्रव्य गुण-पर्यायमय ही भिन्न वस्तु है नहीं॥८७॥
 जिनदेव का उपदेश यह जो हने मोहरु क्षोभ को।
 वह बहुत थोड़े काल में ही सब दुखों से मुक्त हो॥८८॥

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा५-६ और ७

जो जानता ज्ञानात्मक निजरूप अर परद्रव्य को।
 वह नियम से ही क्षय करे दृगमोह एवं क्षोभ को ॥८९॥
 निर्मोह होना चाहते तो गुणों की पहिचान से।
 तुम भेद जानो स्व-पर में जिनमार्ग के आधार से ॥९०॥
 द्रव्य जो सविशेष सत्तामयी उसकी दृष्टि ना।
 तो श्रमण हो पर उस श्रमण से धर्म का उद्भव नहीं ॥९१॥
 आगमकुशल दृगमोहहत आरूढ़ हों चारित्र में।
 बस उन महात्मन श्रमण को ही धर्म कहते शास्त्र में ॥९२॥
 देखकर संतुष्ट हो उठ नमन वन्दन जो करे।
 वह भव्य उनसे सदा ही सद्धर्म की प्राप्ति करे ॥८॥*
 उस धर्म से तिर्यच नर नरसुरगति को प्राप्त कर।
 ऐश्वर्य-वैभववान अर पूरण मनोरथवान हों ॥९॥*

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

द्रव्यसामान्याधिकार

सम्यक् सहित चारित्रयुत मुनिराज में मन जोड़कर।
 नमकर कहूँ संक्षेप में सम्यक्त्व का अधिकार यह ॥१०॥*
 गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
 गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय ॥९३॥
 पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
 थित जीव ही हैं स्वसमय - यह कहा जिनवरदेव ने ॥९४॥
 निजभाव को छोड़े बिना उत्पादव्ययध्रुवयुक्त गुण-
 पर्ययसहित जो वस्तु है वह द्रव्य है जिनवर कहें ॥९५॥
 गुण-चित्रमयपर्याय से उत्पादव्ययध्रुवभाव से।
 जो द्रव्य का अस्तित्व है वह एकमात्र स्वभाव है ॥९६॥
 रे सर्वगत सत् एक लक्षण विविध द्रव्यों का कहा।
 जिनधर्म का उपदेश देते हुए जिनवरदेव ने ॥९७॥
 स्वभाव से ही सिद्ध सत् जिन कहा आगमसिद्ध है।
 यह नहीं माने जीव जो वे परसमय पहिचानिये ॥९८॥

* आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा ८-९ और १०

स्वभाव में थित द्रव्य सत् सत् द्रव्य का परिणाम जो।
 उत्पादव्ययध्रुवसहित है वह ही पदार्थस्वभाव है ॥१९॥
 भंगबिन उत्पाद ना उत्पाद बिन ना भंग हो।
 उत्पादव्यय हो नहीं सकते एक ध्रौव्यपदार्थ बिन ॥१००॥
 पर्याय में उत्पादव्ययध्रुव द्रव्य में पर्यायें हैं।
 बस इसलिए तो कहा है कि वे सभी इक द्रव्य हैं ॥१०१॥
 उत्पादव्ययथिति द्रव्य में समवेत हों प्रत्येक पल।
 बस इसलिए तो कहा है इन तीनमय हैं द्रव्य सब ॥१०२॥
 उत्पन्न होती अन्य एवं नष्ट होती अन्य ही।
 पर्याय किन्तु द्रव्य ना उत्पन्न हो ना नष्ट हो ॥१०३॥
 गुण से गुणान्तर परिणामें द्रव स्वयं सत्ता अपेक्षा।
 इसलिए गुणपर्याय ही हैं द्रव्य जिनवर ने कहा ॥१०४॥
 यदि द्रव्य न हो स्वयं सत् तो असत् होगा नियम से।
 किम होय सत्ता से पृथक् जब द्रव्य सत्ता है स्वयं ॥१०५॥
 जिनवीर के उपदेश में पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता।
 अतद्भाव ही अन्यत्व है तो अतत् कैसे एक हों ॥१०६॥
 सत् द्रव्य सत् गुण और सत् पर्याय सत् विस्तार है।
 तदरूपता का अभाव ही तद्-अभाव अर अतद्भाव है ॥१०७॥
 द्रव्य वह गुण नहीं अर गुण द्रव्य ना अतद्भाव यह।
 सर्वथा जो अभाव है वह नहीं अतद्भाव है ॥१०८॥
 परिणाम द्रव्य स्वभाव जो वह अपृथक् सत्ता से सदा।
 स्वभाव में थित द्रव्य सत् जिनदेव का उपदेश यह ॥१०९॥
 पर्याय या गुण द्रव्य के बिन कभी भी होते नहीं।
 द्रव्य ही है भाव इससे द्रव्य सत्ता है स्वयं ॥११०॥
 पूर्वोक्त द्रव्यस्वभाव में उत्पाद सत् नयद्रव्य से।
 पर्यायनय से असत् का उत्पाद होता है सदा ॥१११॥
 परिणामित जिय नर देव हो या अन्य हो पर कभी भी।
 द्रव्यत्व को छोड़े नहीं तो अन्य होवे किसतरह ॥११२॥
 मनुज देव नहीं है अथवा देव मनुजादिक नहीं।
 ऐसी अवस्था में कहों कि अनन्य होवे किसतरह ॥११३॥



(७) हे प्रभो ! चरणों में तेरे

हे प्रभो ! चरणों में तेरे आ गये ।
भावना अपनी का फल हम पा गये ॥ टेक ॥
वीतरागी हो तुम्हीं सर्वज्ञ हो, सप्त तत्त्वों के तुम्हीं मर्मज्ञ हो ॥
मुक्ति का मारग तुम्हीं से पा गये । हे प्रभो ! चरणों में... ॥१॥
विश्व सारा है झलकता ज्ञान में, किन्तु प्रभुवर लीन हैं निज ध्यान में ॥
ध्यान में निज-ज्ञान को हम पा गये । हे प्रभो ! चरणों में... ॥२॥
तुमने कहा है जगत के सब आत्मा । द्रव्य-दृष्टि से सदा परमात्मा ॥
आज निज परमात्मा पद पा गये । हे प्रभो ! चरणों में... ॥३॥

(८) शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा...

शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा निज आत्मा तब भगवान होगा ।
निज में निज, पर में पर भासक, सम्यग्ज्ञान होगा ॥ टेक ॥
नव तत्त्वों में छिपी हुई जो ज्योति उसे प्रगटायेंगे ।
पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव को लक्ष्य बनायेंगे ॥
शुद्ध चिदानन्द रसपान होगा, निज आत्मा तब... ॥१॥
निज चैतन्य महा-हिमगिरि से परिणति-घन टकरायेंगे ।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दरसमय अमृत-जल बरसायेंगे ॥
मोह महामल, प्रक्षाल होगा, निज आत्मा तब... ॥२॥
आत्मा वेग उपवन में, रत्नत्रय पुष्प खिल्लायेंगे ।
स्वानुभूति की सौरभ से निज नन्दनवन महकायेंगे ॥
संयम से सुरभित उद्यान होगा, निज आत्मा तब... ॥३॥

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

— डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
मैं रगराग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्यपिण्ड, निज रस में रमने वाला हूँ।
मैं ही मेरा कर्ताधर्ता, मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं।
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, परपरिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।

तत्त्वार्थसूत्र

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः

पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः ।

इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः

प्रत्येति श्रद्धघाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥१॥

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो

घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्च-

विंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनेक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च

चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याशुभतर-लेश्या-परिणाम-

देह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४॥

सकिलष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥

तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति - त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा

सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-

नामानो द्वीप-समुद्राः ॥७॥ द्विद्विविष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो

वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्ता योजन-शतसहस्र-

विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-

हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरा-

यता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-

पर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वेडूर्य-रजत-हेममयाः ॥१२॥

मणिविचित्र-पाश्वा उपरिमूले च तुल्य-विस्ताराः ॥१३॥

हिन्दी अनुवाद

जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों के भेदनेवाले हैं और विश्वतत्त्वों के ज्ञाता हैं, उनकी मैं उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ ।

त्रैलोक्यपूज्य अर्हन्त परमात्मा के द्वारा कहे हुये तीन काल, छह द्रव्य, नौपदार्थ, षट्कायजीव षट्लेश्या, पंचास्तिकाय, व्रत, समिति, गति ज्ञान, चारित्र्य ये सब मोक्ष के मूल हैं, जो बुद्धिमान इनको जानता है । श्रद्धा करता है तथा तदनु रूप आचरण करता है; वह निश्चय से शुद्धदृष्टी (सम्यग्दृष्टी) है ।

तृताय अध्याय

१. रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, घूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमः प्रभा ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रम से नीचे-नीचे हैं । २. उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं । ३. नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं । ४. तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःख वाले होते हैं । ५. और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दुःखवाले भी होते हैं । ६. उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाइस और तैंतीस सागर हैं । ७. जम्बूद्वीप आदि शुभ नाम वाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नाम वाले समुद्र हैं । ८. वे सभी द्वीप और समुद्र दूने-दूने व्यास वाले, पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्र को वेष्टित करने वाले और चूड़ी के आकारवाले हैं । ९. उन सब के बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्य में मेरुपर्वत है । १०. भरतवर्ष, हैमतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवर्ष और ऐरावतवर्ष ये सात क्षेत्र हैं । ११. उन क्षेत्रों को विभाजित करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरिणि ये छह वर्षधर पर्वत हैं । १२. ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रंगवाले हैं । १३. इनके पार्श्व मणियों से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर, मध्य और मूल में

पद्म-महापद्म-तिर्गिच्छ-केशरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका हृदास्ते-
 षामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदद्धं विष्कम्भो
 हृदः ॥१५॥ दश-योजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं
 पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ॥१८॥
 तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पत्न्यो-
 पमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥१९॥ गङ्गा-सिन्धु-
 रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरि-कान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-
 सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥
 द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥
 षतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥
 भरतः षड्विंशति-पञ्चयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोत्तविंशति-
 भागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-
 वर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥२६॥ भरत-रा-
 वतयोर्वृद्धि-ह्लासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥
 ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एक-द्वि-त्रि-
 पत्न्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-देवकुरवकाः ॥२९॥
 तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥३१॥ भरतस्य
 विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ॥३२॥
 द्विघातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्कराद्धं च ॥३४॥ प्राङ्मानुषो-
 त्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरत-
 रावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥
 नृस्थिती परावरे त्रिपत्न्योपमान्तमुंहूर्ते ॥३८॥ तिर्य-
 ग्योनिजानां च ॥३९॥

समान विस्तार वाले हैं। १४. इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिग्गिच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं। १५. पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है। १६. दस योजन गहरा है। १७. इसके बीच में एक योजन का कमल है। १८. आगे के तालाब और कमल दूने-दूने हैं। १९. इनमें श्री, ली, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ सामानिक और परिषद् देवों के साथ निवास करती हैं। तथा इनकी आयु एक पत्य की है। २०. इन भरत आदि क्षेत्रों में से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रुष्यकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ बहती हैं। २१. दो-दो नदियों में से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है। २२. किन्तु शेष नदियाँ पश्चिम समुद्र को जाती हैं। २३. गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं। २४. भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन है। २५. विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार भरत-क्षेत्र के विस्तार से दूना-दूना है। २६. उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान है। २७. भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी के और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है। २८. भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित हैं। २९. हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के प्राणियों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पत्य प्रमाण है। ३०. दक्षिण के समान उत्तर में है। ३१. विदेहों में संख्यात वर्ष की आयुवाले प्राणी हैं। ३२. भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नम्बेवाँ भाग है। ३३. धातकी खण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं। ३४. पुष्करार्ध में उतने ही हैं। ३५. मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं। ३६. मनुष्य दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। ३७. देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमि हैं। ३८. मनुष्यों को उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्य और जघन्य अन्तर्मुहुत है। ३९. तिर्यचों की स्थिति भी उतनी ही है।

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥२॥

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥३॥

इन्द्र - सामानिक-त्रायस्त्रिंश - पारिषदात्मरक्ष - लोकपालानीक-
प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्बिषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश-लोक-

पाल-वज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्विन्द्राः ॥६॥

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-
मनः-प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुर-

नाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिवकुमाराः ॥१०॥

व्यन्तराः किन्नर-किपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-
पिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-

प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके

॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥१४॥ बहिरवस्थितः ॥१५॥

वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उप-
र्युपरि ॥१८॥ सौधर्मेशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-

लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्रागतयो-
रारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वंजयन्त-जयन्तापराजितेषु

सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-
विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीर-

परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-
शेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म-लोकालया

(चतुर्थ अध्याय)

१. देव चार निकायवाले हैं। २. आदि के तीन निकायों में पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं। ३. वे कल्पोपपन्न देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पाँच और बारह भेद वाले हैं। ४. उक्त दस आदि भेदों में से प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक रूप हैं। ५. किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश और लोकपाल इन दो भेदों से रहित हैं। ६. प्रथम दो निकायों में दो-दो इन्द्र हैं। ७. ऐशान तक के देव कायप्रवीचार अर्थात् शरीर से विषयमुख भोगनेवाले होते हैं। ८. शेष देव स्पर्श, रूप, शब्द और मन से विषय सुख भोगनेवाले होते हैं। ९. बाकी के सब देव विषय-सुख से रहित होते हैं। १०. भवनवासी देव दसप्रकार के हैं—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुवर्णकुमार, अग्नि-कुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्क-कुमार। ११. व्यन्तरदेव आठ प्रकार के हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच, १२. ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे। १३. ज्योतिषी देव मनुष्यलोक में मेरू की प्रदक्षिणा करने वाले और निरन्तर गतिशील हैं। १४. उन गमन करने वाले ज्योतिषियों के द्वारा किया हुआ काल-विभाग है। १५. मनुष्यलोक के बाहर ज्योतिषी देव स्थिर रहते हैं। १६. चौथे निकाय के देव वैमानिक हैं। १७. वे दो प्रकार के हैं—कलोपपन्न और कल्पातीत। १८. वे ऊपर-ऊपर रहते हैं। १९. सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मात्तर, लान्तव कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार तथा आतत—प्राणत, आरण—अच्युत, नौ ग्रंथेयक और विजय, वैजयन्त, जयन्त अग्राजित तथा सर्वार्थसिद्धि में वे निवास करते हैं। २०. स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय-विषय और अवधिविषय की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव अधिक हैं। २१. गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं। २२. दो तीन कल्प युगलों में और शेष के क्रम से पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले देव हैं। २३. ग्रंथेयकों से पहले तक कल्प हैं।

लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्य-वह्नयरुण-गदंतोयतुषिता-
व्याबाधारिष्ठाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥२६॥ औप-
पादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुर-नाग-
सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीन-मिताः ॥२८॥
सौधर्मशानयोः सागरोपमैऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः
सप्त ॥३०॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि
तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु
सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः-
परतःपूर्वा पूर्वाऽन्तरः ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥
दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्त-
राणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां
च ॥४०॥ तदष्ट-भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ साग-
रोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

पञ्चम अध्याय

अजीव-काया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि
॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः
पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि
च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मकजीवानाम् ॥८॥ आकाश-
स्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः
॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

२४. लौकान्तिक देवों का ब्रह्मलोक निवास स्थान है। २५. सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्यावाध और अरिष्ट ये लौकान्तिक देव हैं। २६. विजयादिक में दो चरमावाले देव होते हैं। २७. उपपाद जन्मवाले और मनुष्यों के सिवा शेष सब जीव तिर्यञ्च योनिवाले हैं। २८. असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, दीपकुमार और शेष भवनवासियों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक सागर, तीन पल्य, ढाई पल्य, दो पल्य और डेढ़पल्य प्रमाण है। २९. सौधर्म और ऐशान कल्प में दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। ३०. सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में सात सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। ३१. ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल से लेकर प्रत्येक युगल में आरण-अच्युत तक क्रम से साधिक तीन से अधिक सात सागरोपम, साधिक सात से अधिक सात सागरोपम, साधिक नौ से अधिक सात सागरोपम, साधिक ग्यारह से अधिक सात सागरोपम, तेरह से अधिक सात सागरोपम और पन्द्रह से अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है। ३२. आरण-अच्युत से ऊपर नौ त्रैवेयक में से प्रत्येक में नौ अनुदिश में, चार विजयादिक में एक-एक सागर अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। तथा सर्वार्थ सिद्धी में पूरी तैंतीस सागर स्थिति है। ३३. सौधर्म और ऐशान कल्प में जघन्य स्थिति साधिक एक पल्य है। ३४. आगे-आगे पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है। ३५. दूसरी आदि भूमियों में नरकों की पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति ही अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है। ३६. प्रथम भूमि में दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है। ३७. भवनवासियों में भी दस हजार वर्ष जघन्य है। ३८. और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है। ४०. ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है। ४१. ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति का आठवाँ भाग है। ४२. सब लौकान्तिकों की स्थिति आठ सागर है।

पञ्चम अध्याय

१. धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीवकाय हैं। २. ये धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल द्रव्य हैं। ३. जीव भी द्रव्य हैं। ४. उक्त द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं और अरूपी हैं। ५. पुद्गल रूपी हैं। ६. आकाश तक एक-एक द्रव्य हैं। ७. तथा निष्क्रिय हैं। ८. धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश हैं। ९. आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। १०. पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं। ११. परमाणु के प्रदेश नहीं होते। १२. इन धर्मादिक द्रव्यों का श्रवगाह लोकाकाश में है।

मिथ्याज्ञान
का
स्वरूप

मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ संख्या
85 से 88

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञान का स्वरूप कहते हैं :- प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों को अयथार्थ जानने का नाम मिथ्याज्ञान है । उसके द्वारा उनको जाननेमें संशय, विपर्याय, अनध्यवसाय होता है । वहाँ, 'ऐसे हैं कि ऐसे हैं ?' - इस प्रकार परस्पर विरुद्धता सहित दोरूप ज्ञान उसका नाम संशय है । जैसे - 'मैं आत्मा हूँ कि शरीर हूँ ?' - ऐसा जानना । तथा 'ऐसा ही है' इस प्रकार वस्तुस्वरूपसे विरुद्धता सहित एकरूप ज्ञान उसका नाम विपर्याय है । जैसे - 'मैं शरीर हूँ' - ऐसा जानना । तथा 'कुछ है' ऐसा निर्धाररहित विचार उसका नाम अनध्यवसाय है । जैसे - 'मैं कोई हूँ' - ऐसा जानना । इस प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों में संशय, विपर्याय, अवध्यवसायरूप जो जानना हो उसका नाम मिथ्याज्ञान है ।

तथा अप्रयोजनभूत पदार्थोंको यथार्थ जाने या अयथार्थ जाने उसकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान-सम्यग्ज्ञान नाम नहीं है । जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि रस्सीको रस्सी जाने तो सम्यग्ज्ञान नाम नहीं होता, और सम्यग्दृष्टि रस्सीको साँप जाने तो मिथ्याज्ञान नाम नहीं होता ।

यहाँ प्रश्न है कि - प्रत्यक्ष सच्चे-झूठे ज्ञानको सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान कैसे न कहें ?

समाधान :- जहाँ जाननेहीका - सच-झूठका निर्धार करनेका प्रयोजन ही वहाँ तो कोई पदार्थ है उसके सच-झूठ जाननेकी अपेक्षा ही सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान नाम दिया जाता है । जैसे - प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाणके वर्णनमें कोई पदार्थ होता है ; उसके सच्चे जाननेरूप सम्यग्ज्ञान का ग्रहण किया है और संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कहा है । तथा यहाँ संसार-मोक्षके कारणभूत सच-झूठ जाननेका निर्धार करना है ; वहाँ रस्सी, सर्पादिकका यथार्थ या अन्यथा ज्ञान संसार-मोक्षका कारण नहीं है,

इसलिये उनकी अपेक्षा यहाँ सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान नहीं कहे हैं । यहाँ तो प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वोंके ही जाननेकी अपेक्षा सम्यग्ज्ञान-मिथ्याज्ञान कहे हैं ।

इसी अभिप्रायसे सिद्धान्तमें मिथ्यादृष्टि के तो सर्व जाननेको मिथ्याज्ञान ही कहा और सम्यग्दृष्टिके सर्व जाननेको सम्यग्ज्ञान कहा ।

यहाँ प्रश्न है कि - मिथ्यादृष्टिको जीवादि तत्त्वोंका अयथार्थ जानना है, उसे मिथ्याज्ञान कहो; परन्तु रस्सी, सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो ?

समाधान:- मिथ्यादृष्टि जानता है, वहाँ उसको सत्ता-असत्ताका विशेष नहीं है; इसलिये कारणविपर्यय व स्वरूपविपर्यय व भेदाभेदविपर्ययको उत्पन्न करता है । वहाँ जिसे जानता है उसके मूलकारणको नहीं पहिचानता, अन्यथा कारण मानता है; वह तो कारणविर्यय है । तथा जिसे जानता है उसके मूलवस्तुत्वरूप स्वरूपको नहीं पहिचानता, अन्यथास्वरूप मानता है; वह स्वरूपविपर्यय है । तथा जिसे जानता है उसे वह इनसे भिन्न है, इनसे अभिन्न है-ऐसा नहीं पहिचानता, अन्यथा भिन्न-अभिन्नपना मानता है, सो भेदाभेदविपर्यय है । इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके जानने में विपरीतता पायी जाती है ।

जैसे मतवाला माताको पत्नी मानता है, पत्नीको माता मानता है; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टिके अन्यथा जानना होता है । तथा जैसे किसी कालमें मतवाला माताको माता और पत्नीको पत्नी भी जाने तो भी उसके निश्चयरूप निर्धारसे श्रद्धान सहित जानना नहीं होता, इसलिये उसको यथार्थ ज्ञान नहीं कहा जाता; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि किसी कालमें किसी पदार्थको सत्य भी जाने, तो भी उसके निश्चयरूप निर्धारसे श्रद्धान सहित जानना नहीं होता; अथवा सत्य भी जाने, परन्तु उनसे अपना प्रयोजन अयथार्थ ही साधता है; इसलिये उसके सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहते हैं ।

यहाँ प्रश्न है कि - इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

समाधान :- मोहके उदयसे जो मिथ्यात्वभाव होता है सम्यक्त्व नहीं होता; वह इस मिथ्याज्ञानका कारण है । जैसे - विषके संयोगसे भोजनको भी विषरूप कहते हैं वैसे मिथ्यात्वके सम्बन्धसे ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पाता है ।

यहाँ कोई कहे कि - ज्ञानावरणको निमित्त क्यों नहीं कहते ?

समाधान :- ज्ञानावरणके उदयसे तो ज्ञानके अभावरूप अज्ञानभाव होता है तथा उसके क्षयोपशम किञ्चित् ज्ञानरूप मति-आदिज्ञान होते हैं । यदि इनमेंसे किसीको मिथ्याज्ञान, किसीको सम्यग्ज्ञान कहें तो यह दोनों ही भाव मिथ्यादृष्टि तथा सम्यग्दृष्टि के पाये जाते हैं, इसलिये उन दोनोंके मिथ्याज्ञान तथा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव हो जायेगा और वह सिद्धान्तसे विरुद्ध होता है, इसलिये ज्ञानावरणका निमित्त नहीं बनता ।

यहाँ फिर पूछते हैं कि - रस्सी, सर्पादिकके अथार्थ-यथार्थ ज्ञानका कारण कौन है ? उसहीको जीवादि तत्त्वोंके अथार्थ-यथार्थ ज्ञानका कारण कहे ?

उत्तर :- जाननेमें जितना अथार्थपना होता है उतना तो ज्ञानावरणके उदयसे होता है; और जो यथार्थपना होता है उतना ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे होता है । जैसे कि - रस्सीको सर्प जाना वहाँ यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है इसलिये यथार्थ जानता है । उसी प्रकार जीवादितत्त्वोंको यथार्थ जाननेकी शक्ति होनेमें तो ज्ञानावरणहीका निमित्त है ; परन्तु जैसे किसी पुरुषको क्षयोपशमसे दुःख तथा सुखके कारणभूत पदार्थोंको यथार्थ जाननेकी शक्ति हो; वहाँ जिसकी असातावेदनीयका उदय ही वह दुःखके कारणभूत जो हों उन्हींका वेदन करता है, सुखके कारणभूत पदार्थोंका वेदन नहीं करता । यदि सुखके कारणभूत पदार्थोंका वेदन करे तो सुखी हो जाये, सो असाताका उदय होनेसे हो नहीं सकता । इसलिये यहाँ दुःखके कारणभूत और सुखके कारणभूत पदार्थोंके वेदनमें ज्ञानावरणका निमित्त नहीं है, असाता-साता का उदय ही कारणभूत है ।

उसी प्रकार जीवमें प्रयोजनभूत जीवादितत्त्व तथा अप्रयोजनभूत अन्यको यथाथ जानने की शक्ति होती है । वहाँ जिसके मिथ्यात्वका उदय होता है वह तो अप्रयोजनभूत हों उन्हींका वेदन करता है, जानता है ; प्रयोजनभूतको नहीं जानता । यदि अप्रयोजनभूतको जाने तो सम्यग्दर्शन होजाये, परन्तु वह मिथ्यात्वका उदय होने पर हो नहीं सकता; इसलिये यहाँ प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थोंको जाननेमें ज्ञानावरणका निमित्त नहीं है; मिथ्यात्वका उदय-अनुदय ही कारणभूत है ।

यहाँ ऐसा जानना कि - वहाँ एकेन्द्रियादिकमें जीवादितत्त्वों को यथाथ जाननेकी शक्ति ही न हो, वहाँ तो ज्ञानावरणका उदय और मिथ्यात्वके उदयसे हुआ मिथ्यादर्शन इन दोनोंका निमित्त है । तथा जहाँ संजी मनुष्यादिकमें क्षयोपशमावि लब्धि होनेसे शक्ति हो और न जाने, वहाँ मिथ्यात्वके उदयका ही निमित्त जानना ।

इसलिये मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरणको नहीं कहा, मोहके उदयसे हुआ भाव वही कारण कहा है ।

यहाँ फिर प्रश्न है कि - ज्ञान होने पर श्रद्धान होता है, इसलिये पहले मिथ्याज्ञान कहो बादमें मिथ्यादर्शन कहो ?

समाधान :- है तो ऐसा ही; जाने बिना श्रद्धान कैसे हो ? परन्तु मिथ्या और सम्यक् - ऐसी संज्ञा ज्ञानको मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शनके निमित्तसे होती है । जैसे - मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि सुवर्णादि पदार्थों को जानते तो समान हैं, (परन्तु) वही जानना मिथ्यादृष्टि के मिथ्याज्ञान नाम पाता है और सम्यग्दृष्टि के सम्यग्ज्ञान नाम पाता है । इसी प्रकार सर्व मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञानको मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन कारण जानना ।

इसलिये जहाँ सामान्यतया ज्ञान-श्रद्धानका निरूपण हो वहाँ तो ज्ञान कारणभूत है, उसे प्रथम कहना और श्रद्धान कार्यभूत है, उसे बादमें कहना । तथा

जहाँ मिथ्या-सम्यक् ज्ञान-श्रद्धानका निरूपण हो वहाँ श्रद्धान कारणभूत है, उसे पहले कहना और ज्ञान कार्यभूत है उसे बादमें कहना ।

फिर प्रश्न है कि - ज्ञान-श्रद्धान तो युगपत् होते हैं, उनमें कारण-कार्यपना कैसे कहते हो ?

समाधान : वह ही तो वह हो - इस अपेक्षा कारणकार्यपना होता है । जैसे - दीपक और प्रकाश युगपत् होते हैं ; तथापि दीपक हो तो प्रकाश हो, इसलिये दीपक कारण है प्रकाश कार्य है । उसी प्रकार ज्ञान-श्रद्धानके है । अथवा मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान के व सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानके कारण-कार्यपना जानना ।

फिर प्रश्न है कि - मिथ्यादर्शनके संयोगसे ही मिथ्याज्ञान नाम पाता है, तो एक मिथ्यादर्शनको ही संसारका कारण कहना था, मिथ्याज्ञानको अलग किसलिये कहा ?

समाधान :- ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि के क्षयोपशमसे हुए यथार्थ ज्ञानमें कुछ विशेष नहीं है तथा वह ज्ञान केवलज्ञानमें भी जा मिलता है, जैसे नदी समुद्रमें मिलती है । इसलिये ज्ञानमें कुछ दोष नहीं है । परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहाँ लगता है वहाँ एक ज्ञेयमें लगता है ; और इस मिथ्यादर्शनके निमित्तसे वह ज्ञान अन्य ज्ञेयोंमें तो लगता, परन्तु प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वोंका यथार्थ निर्णय करने में नहीं लगता । सो यह ज्ञानमें दोष हुआ; इसे मिथ्याज्ञान कहा । तथा जीवादितत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान नहीं होता सो यह श्रद्धानमें दोष हुआ; इसे मिथ्यादर्शन कहा । ऐसे लक्षणभेदसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञानको भिन्न कहा ।

इस प्रकार मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहा । इसीको तत्त्वज्ञानके अभावसे अज्ञान कहते हैं और अपना प्रयोजन नहीं साधता इसलिये इसीको कुज्ञान कहते हैं ।

समयसार

(हरिगीत)

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं - यह कहा व्यवहार
स

ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ॥७॥

ज्ञानी (आत्मा) के ज्ञान, दर्शन और चारित्र - ये तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं; निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, दर्शन भी नहीं है और चारित्र भी नहीं है; ज्ञानी (आत्मा) तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

इस गाथा का भाव आत्मख्याति में आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“इस ज्ञायकभाव के बंधपर्याय के निमित्त से अशुद्धता होती है - यह बात तो दूर ही रही, इसके तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं हैं; क्योंकि अनन्त धर्मोंवाले एक धर्मों में जो निष्णात नहीं हैं - ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को, धर्मों को बतानेवाले कितने ही धर्मों के द्वारा उपदेश करते हुए आचार्यों का; यद्यपि धर्म और धर्मों का स्वभाव से अभेद है, तथापि नाम से भेद करके, व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है; किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो अनन्त पर्यायों को एक द्रव्य पी गया होने से, जो एक है - ऐसे कुछ मिले हुए आस्वादवाले, अभेद, एकस्वभावी तत्त्व का अनुभव करनेवाले को दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है और चारित्र भी नहीं है; एक शुद्ध ज्ञायक ही है।”

‘आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुण नहीं हैं’ - यह बात नहीं है; क्योंकि आत्मा तो ज्ञानादि अनन्तगुणों का अखण्डपिण्ड ही है और ज्ञानादि गुणों के अखण्डपिण्डरूप आत्मा को ही ज्ञायकभाव कहते हैं।

छठवीं गाथा में ज्ञायकभाव को उपासित होता हुआ शुद्ध कहा था, अनुभूति में आता हुआ शुद्ध कहा था और अनुभूति निर्विकल्पदशा में ही होती है। गुणों के विस्तार में जाने से, भेदों में जाने से विकल्पों की उत्पत्ति होती है; इसकारण अनुभूति के विषयभूत ज्ञायकभाव में गुणभेद का निषेध किया गया है।

गुणभेद अनुपचारित-सद्भूतव्यवहारनय का विषय है और ज्ञायकभाव व्यवहारातीत है; इसकारण

त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव में गुणभेद का निषेध किया गया है। छठवीं गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त पर्यायों के निषेध द्वारा उपचरित-सद्भूतव्यवहारनय का निषेध किया गया था। इसप्रकार अब उपचरित और अनुपचरित दोनों ही सद्भूतव्यवहारनयों का निषेध हो गया है।

उपचरित और अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनयों का निषेध तो तीसरी गाथा की टीका में ही कर आये हैं और 'परद्रव्यों से भिन्न उपासित होता हुआ' - कहकर छठवीं गाथा की टीका में भी कर दिया है। छठवीं व सातवीं गाथा में उपचरित-सद्भूतव्यवहारनय एवं अनुपचरितसद्भूत-व्यवहारनय का भी निषेध कर दिया गया है। इसप्रकार चारों ही प्रकार के व्यवहारनयों का निषेध हो गया है।

इसप्रकार पर से भिन्न, प्रमत्त-अप्रमत्त पर्यायों से भिन्न एवं गुणभेद से भी भिन्न ज्ञायकभाव अनुभूति में आता हुआ शुद्ध कहलाता है। त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव की शुद्धता का वास्तविक स्वरूप यही है और यही शुद्धस्वभाव दृष्टि का विषय है, ध्यान का ध्येय है और परमशुद्धनिश्चयनय का विषयभूत परमपदार्थ है तथा परमभावग्राही द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत परमपारिणामिकभाव है; इसे ही यहाँ शुद्ध ज्ञायकभाव शब्द से अभिहित किया गया है।

जिसप्रकार दाहक, पाचक और प्रकाशक - इन गुणों के कारण अग्नि को भी दाहक, पाचक और प्रकाशक कहा जाता है; पर मूलतः अग्नि तीन प्रकार की नहीं, वह तो एक प्रकार की ही है, एक ही है। उसीप्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुणों के कारण आत्मा को भी ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहा जाये; पर इसकारण आत्मा तीन प्रकार का तो नहीं हो जाता; आत्मा तो एक प्रकार का ही रहता है, एक ही रहता है।

लोक में कर्मोदय से होनेवाले रागादिभावों को आत्मा की अशुद्धि माना जाता है; व्यवहारनय की प्ररूपणा से जिनवाणी में भी इसप्रकार का प्ररूपण प्राप्त होता है; पर यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद को भी अशुद्धि कहा जा रहा है; तब फिर रागादिरूप अशुद्धि की क्या बात करें ?

तात्पर्य यह है कि जब दृष्टि के विषय में विकल्पोत्पादक होने से गुणभेद को भी शामिल नहीं किया जाता है तो रागादिरूप प्रमत्त पर्यायों को शामिल करने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

अनुभव में तो जो एक अभेद अखण्ड नित्य ज्ञायकभाव दिखाई देता है; वही दृष्टि का विषय है, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसी में अपनापन स्थापित होने का नाम सम्यग्दर्शन है, एकमात्र वही ध्यान का ध्येय है; अधिक क्या कहें - मुक्ति के मार्ग का मूल आधार वही ज्ञायकभावरूप भगवान आत्मा है।

'वह भगवान आत्मा अन्य कोई नहीं, स्वयं मैं ही हूँ' - ऐसी दृढ़-आस्था, स्वानुभवपूर्वक दृढ़प्रतीति, तीव्ररुचि ही वास्तविक धर्म है, सच्चा मुक्ति का मार्ग है। इस ज्ञायकभाव में अपनापन स्थापित करना ही आत्मार्थी मुमुक्षु भाइयों का एकमात्र कर्तव्य है।

परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत, व्यवहारातीत, परमशुद्ध, निज निरंजन नाथ ज्ञायकभाव का स्वरूप स्पष्ट करना ही समयसार का मूल प्रतिपाद्य है और इसी शुद्ध ज्ञायकभाव का स्वरूप इन छठवीं-सातवीं गाथाओं में बताया गया है। अतः ये गाथायें समयसार की आधारभूत गाथायें हैं।

(५) ऐसे मुनिवर

ऐसे मुनिवर देखे वन में । जाके राग-द्वेष नहीं तन में ॥
ग्रीष्म ऋतु शिखर के ऊपर, वे तो मगन रहे ध्यानन में ॥१॥
चातुरमास तरु तल ठाड़े, गुरु बून्द सहें छिन-छिन में ॥२॥
शीतमास दरिया के किनारे, मुनि धीरज धरें ध्यानन में ॥३॥
ऐसे गुरु को मैं नित ध्याऊँ, देत ढोक सदा चरणन में ॥४॥

(१) मंगलाचरण

श्री अरहंत सदा मंगलमय मुक्तिमार्ग का करें प्रकाश,
मंगलमय श्री सिद्धप्रभू जो निजस्वरूप में करें विलास,
शुद्धात्म के मंगल साधक साधु पुरुष की सदा शरण हो,
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥
मंगलमय चैतन्यस्वरों में परिणति की मंगलमय लय हो,
पुण्य-पाप की दुखमय ज्वाला, निज आश्रय से त्वरित विलय हो ।
देव-शास्त्र-गुरु को वन्दन कर, मुक्ति वधु का त्वरित वरण हो,
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥
मंगलमय पाँचों कल्याणक मंगलमय जिनका जीवन है,
मंगलमय वाणी सुखकारी शाश्वत सुख की भव्य सदन है ।
मंगलमय सत्धर्म तीर्थ-कर्ता की मुझको सदा शरण हो,
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय मुक्तिमार्ग मंगलदायक है,
सर्व पाप मल का क्षय करके शाश्वत सुख का उत्पादक है ।
मंगल गुण-पर्यायमयी चैतन्यराज की सदा शरण हो,
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो ॥

(२) रोम रोम से

रोम-रोम से निकले प्रभुवर ! नाम तुम्हारा, हाँ नाम तुम्हारा ।
ऐसी भक्ति करूँ प्रभुजी ! पाऊँ न जनम दुबारा ।।टेक।।
जिनमन्दिर में आया, जिनवर दर्शन पाया ।
अन्तर्मुख मुद्रा को देखा, आतम दर्शन पाया ।।
जनम-जनम तक न भूलूंगा, यह उपकार तुम्हारा ।।१।।
अरहंतों को जाना, आतम को पहिचाना ।
द्रव्य और गुण-पर्यायों से, जिन सम निज को माना ।।
भेदज्ञान ही महामंत्र है, मोह तिमिर क्षयकारा ।।२।।
पंच महाव्रत धारूँ, समिति गुप्ति अपनाऊँ ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चलकर, मोक्ष महल में आऊँ ।।
पाप भाव की कुटिल कालिमा पुण्य भाव की मधुर लालिमा
नष्ट करूँ दुखकारा ।।३।।

देव-शास्त्र-गुरु मेरे, हैं सच्चे हितकारी ।
सहज शुद्ध चैतन्यराज की महिमा, जग से न्यारी ।
भेदज्ञान बिन नहीं मिलेगा, भव का कभी किनारा ।।४।।

(५) अशरीरी सिद्ध भगवान

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ।
अविरुद्ध शुद्ध चिदधन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे ।। टेक ।।
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलाघु अवगाहन ।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन ।।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे ।।१।।
रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल ।
कुल गोत्र रहित निश्कुल, मायादि रहित निश्छल ।।
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे ।।२।।

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो ।
 स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो ॥
 हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे ॥३॥
 भविजन तुम सम निज-रूप ध्याकर तुम सम होते ।
 चैतन्य पिण्ड शिवभूप होकर सब दुःख खोते ॥
 चैतन्यराज सुखखान, दुःख दूर करो मेरे ॥४॥

(६) रोम रोम पुलकित

रोम-रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ।
 ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जाँय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥
 जिनमंदिर में श्री जिनराज, तनमंदिर में चेतनराज ।
 तन-चेतन को भिन्न पिछान, जीवन सफल हुआ है आज ॥ टेक ॥
 वीतराग सर्वज्ञ देव प्रभु, आये हम तेरे दरबारा ।
 तेरे दर्शन से निज-दर्शन, पाकर हों भव से पार ॥
 मोह-महातम तुरत विलाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥१॥
 दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रभु का, बल अनन्त आनन्द अपार ।
 गुण अनन्त से शोभित हैं प्रभु, महिमा जग में अपरम्पार ॥
 शुद्धात्म की महिमा आय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥२॥
 लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान ।
 लीन रहें निज शुद्धात्म में, प्रतिक्षण हो आनन्द महान ॥
 ज्ञायक पर दृष्टी जम जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥३॥
 प्रभु की अन्तर्मुख-मुद्रा लखि, परिणति में प्रगटे समभाव ।
 क्षणभूर में हों प्राप्त विलय को, पर-आश्रित सम्पूर्ण विभाव ॥
 रत्नत्रय-निधियाँ प्रगटाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥४॥

Log on to

www.jaana.org

शास्त्राभ्यास की महिमा

देखो ! शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होनेपर परंपरा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षरूप फल को प्राप्त होता है। यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रगट होते हैं -

१. क्रोधादि कषायों की तो मंदता होती है।
२. पंचेंद्रियों के विषयों के बारे में प्रवृत्ति रुकती है।
३. अति चंचल मन भी एकाग्र होता है।
४. हिंसादि पांच पापोंमें प्रवृत्ति नहीं होती।
५. स्तोक (अल्प) ज्ञान होनेपर भी त्रिलोक के तीन कालसंबंधी चराचर पदार्थों का जानना होता है।
६. हेय - उपादेय की पहचान होती है।
७. ज्ञान आत्मसन्मुख होता है।
८. अधिक - अधिक ज्ञान होनेपर आनंद उत्पन्न होता है।
९. लोक में महिमा - यश विशेष होता है।
१०. सातिशय पुण्य का बंध होता है।

- पं. टोडरमलजी- 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'

तुमने भाग्य से अवसर पाया है, इसलिये तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिए प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो। अन्य जीवों का जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखवाना और पढ़ने पढ़ाने वालों की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण उनका साधन करना, क्योंकि उनके द्वारा भी परंपरा कार्य सिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है।।

'सत्तास्वरूप' ८८

601 W. Parker Road, Suite 106 • Plano, Texas 75023

Tel: 972-424-4902 • Fax: 972-424-0680

Email: jainadhyatma@gmail.com;

Log on to totally redesigned website

www.jaana.org